बालगल्पमाला

वा

आदर्श चरितावली।

लेखक

आरा निवासी पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा ।

Boys' Story-Book

By

Pandit ISHWARI PRASAD SHARMA,

Author of Necklace of Tales, Mansingh,
Lessons on Hindi Essay writing
Etc. Etc. Etc.

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी

नं० २०१ हरसिन रोड, कलकत्ता ।

बालबान्धव ग्रन्थावली·पुस्तक नं० १
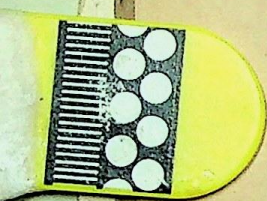
बालगल्पमाला

वा

आदर्श चरितावली

विविध पुस्तकोंके प्रणेता आरा निवासी—

पं० ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा

(उपनाम 'दीनानाथ')

लिखित।

BIOGRAPHIES OF GREAT, BUT ESPECIALLY OF GOOD MEN, ARE NEVERTHELESS MOST INSTRUCTIVE AND USEFUL, AS HELPS, GUIDES AND INCENTIVES TO OTHERS.

SAMUEL SMILES.

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी

२०१, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

सन् १९१२

प्रथम वार १०००　　　　मूल्य ।=)
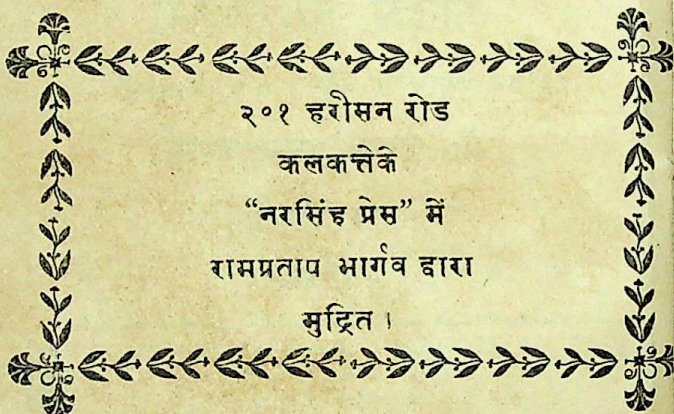
२०१ हरीसन रोड

कलकत्तेके

"नरसिंह प्रेस" में

रामप्रताप भार्गव द्वारा

मुद्रित ।

यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनाः ।
स यत्प्रमाणंकुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता ।

उपहार ।

जननी भारत भूमिके

आशाकुसुम

छात्रवृन्दों के कोमल करकमलोंमें यह
नवीन उपहार सप्रेम समर्पित है,
जिनके ऊपर देशका भविष्य निर्भर है।

ईश्वरीप्रसाद शर्मा, आरा ।

विषय-सूची ।

पेज

विषय-सूची ।

राज-भक्ति

अतिथि-सत्कार

सत्यपालन

कर्त्तव्यपालन

प्रत्युपकार

वक्तव्य।

था कहानियोंके द्वारा बालकोंको शिक्षा देनेकी चाल सभी देशोंमें जारी है। इस प्रकार की शिक्षा अथवा उपदेश का बालकोंके चित्तपर जैसा अच्छा और जितनी जल्दी असर पड़ता है वैसा और किसी तरहसे नहीं। हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदि कहानियोंकी पुस्तकोंकी रचना इस बातको प्रमाणित करती है। वास्तवमें बड़े बड़े पोथोंको पढ़ानेकी अपेक्षा सरल भाषामें छोटी छोटी उपदेशजनक कहानियोंके द्वारा बालकों के आदर्श होने योग्य दृष्टान्त दिखलाना अधिक फलदायी है। जिन अधिकारियोंके हाथ में बालकोंकी शिक्षाका भार न्यस्त है उनकी भी यही राय है। यही सब सोच विचार कर हिन्दीभाषी बालवृन्दोंके उपकारके लिये हमने यह छोटी सी पुस्तक तैयार की है। अगर इसके पढ़नेसे उनका कुछ भी उपकार होगा तो हम अपना लेखनी-घर्षण सफल समझेंगे। इस ढंगकी पुस्तकें अँगरेज़ी में बहुत हैं और बँगला आदि उन्नत भारतीय भाषाओं में भी इस तरह की पुस्तकोंका वैसा अभाव

नहीं है जैसा हिन्दी में है, इसीसे हिन्दीमें बालकोपकारी साहित्य की कमी देखकर यह प्रयत्न किया गया है। इस पुस्तक में ऐसी ही कहानियाँ दी गयी हैं जिन्हें पढ़ने में बालकों का जी भी लगे और शिक्षा भी प्राप्त होवे। जिन कहानियों से जिस गुणकी शिक्षा मिलती है वह सबसे ऊपर मोटे मोटे अक्षरोंमें लिख दिया गया है और प्रायः प्रत्येक विषयके अन्त में ऐसी उक्तियाँ (Quotations) जोड़ दी गयी हैं। जिन्हें कण्ठस्थ करलेने से बालकका बहुत उपकार हो सकता है। सारांश यह कि पुस्तकको बालकोंके लिये हितकर बनानेकी पूरी चेष्टा की गयी है। इसमें हमें सफलता कहाँतक हुई है सो पाठकगण ही विचार देखें।

हमारी 'गल्पमाला' नाम्नी पुस्तकको देखकर हमारे कितने ही मित्रोंने सलाह दी कि आप ऐसी ही कोई कहानीकी पुस्तक लिखें जो बालकों के लिये उपयोगी हो। वर्त्तमान पुस्तक उन लोगोंकी उसी प्रेरणाका फल है। हमारे एक सहाध्यापकका कहना है कि प्रबन्ध-रचना करते समय इसकी कहानियोंको अपने लेख के भीतर रखकर विद्यार्थीगण अपना प्रबन्ध अधिक सुन्दर बना सकेंगे। उनकी बात कहाँ तक युक्तियुक्त और यथार्थ है सो तो वही बतला सकते हैं जिनको लाभ पहुँचानेके लिये यह किताब लिखी गयी है

अथवा जिनके हाथ में बालकोंकी शिक्षाका कार्य्य सौंपा गया है।

अपने परम हितैषी और मातृभाषा हिन्दीके अनन्य भक्त पं० हरिदासजी वैद्यको अपनी हर किताबमें धन्यवाद देनेकी चेष्टा हम व्यर्थ ही करते हैं; क्योंकि एक तो वे हमारे धन्यवादके भूखे नहीं हैं, दूसरे थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने हमारे साथ जैसी अच्छी सुहृदयता प्रकट की है उसके लिये हम उन्हें पूरा २ धन्यवाद दे भी नहीं सकते।

निवेदक,

महाजन टोली,
ता: २७ जून सन् १९१२

ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा,
अध्यापक, के. जे. एकाडेमी,
आरा।

॥ श्रीः ॥
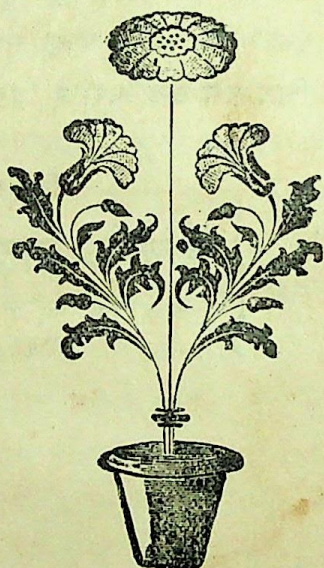
पितृ-भक्ति।

(१) रामचन्द्र।

अयोध्याके राजा दशरथ जब बहुत बूढ़े हो गये तब उन्होंने अपने मनमें सोचा, कि अपने गुणवान् पुत्र श्री रामचन्द्र को युवराज बना कर स्वयं कुछ दिन विश्राम करूँ। यह बात मनमें ठान, उन्होंने अपने सब सभासदोंको बुलाकर इस विषयमें उनकी राय पूछी। सबने एक स्वरसे कहा, "महाराज! आप वृद्ध हुए, अब

आपको अवश्य इन राजकीय झंझटोंसे अलग रहना उचित है। हमलोगोंकी भी बड़ी इच्छा है कि आपके सुयोग्य पुत्र रामचन्द्रको, आपके सामने ही, सिंहासन पर बैठा देखें।"

सबकी सम्मति देख राजाने रामचन्द्रको बुलाकर उन्हें पत्नि सहित उपवास करनेके लिये कहा और उनपर अपनी अभिलाषा प्रकट की। रामचन्द्रने पिताके चरणोंमें नमस्कार कर माताओंको यह समाचार जाकर सुनाया। राज्यभरमें इस शुभसमाचारकी डौंड़ी पिटवा दी गयी। घर घर आनन्द मङ्गल होने लगा। स्त्रियाँ मङ्गलके गीत गाने लगीं। गली, सड़क, बाग़ बग़ीचे, कोठे, अटारी, छत, मुंड़ेरे सभी गहगह महमह हो उठे। रातके समय सारे नगरमें दीपावली का सा समा दीख पड़ने लगा। जहाँ देखो वहीं रामके राज्याभिषेकको चर्चा!

भरतकी माता कैकेयीके नैहरसे मन्थरा नामकी एक नयी दासी आयी थी। उसने नगरकी ऐसी अपूर्व शोभा देख लोगोंसे पूछा, "हे नगरनिवासियो! आज किस लिये सारे नगरमें ऐसी चहलपहल दीख पड़ती है? राज-महलकी शोभा आज क्यों सौगुणी बढ़ गयी है?" लोगोंसे जब उत्तरमें रामके सिंहासन पर बैठनेकी बात सुनी तब तो उसके सारे तनमें चिन-

गारीसी लग गयी और वह उलटे पाँव कैकेयीके पास जाकर बोली, "अब भी तुम कानोंमें तेल डाले पड़ी हो? तुम्हारे सर्वनाशकी तैयारी हो रही है तौभी तुम्हारी निद्रा नहीं भङ्ग होती?" दुष्टा दासीकी बात सुन कैकेयीने पूछा, "भला, बतला तो सही मेरे सर्वनाशकी कैसी तय्यारी हो रही है? तेरा रंग ढंग देख मुझे बड़ा डर मालूम होता है। ठीक ठीक बतला।" तब उसने बड़े विस्तारपूर्वक रामके अभिषेककी बात कह सुनायी। सुनते ही कैकेयी अपने गहने उतार उसे देने लगी और बोली, "यह तो तू बड़ा ही प्रिय सम्बाद ले आयी! इसको सुन मुझे इतनी प्रसन्नता हुई है, कि इस समय मैं तुझे मुँह-माँगी वस्तु दे सकती हूँ।"

क्रोधके साथ झटककर कैकेयीके दिये हुए आभूषणोंको फेंककर वह कुटिल-कला-कुशला दासी बोली, "बुद्धिहीन कहींकी! तुम विषको अमृत समझती हो। यदि राम राजा होंगे तो उनके पीछे उनका पुत्र राज्य पावेगा। इसलिये भरत एकबारगी राज्यसे वञ्चित रह जायँगे। रामचन्द्र राजा होनेपर राज्य छिन जानेके डरसे भरतको अवश्य ही मार डालेंगे। तुम इस विपदकी गुरुता नहीं समझती हो, इसीसे विष और अमृत तुम्हें पहिचान नहीं पड़ता।"

कैकेयीने कहा, "अरी पापिन ! मेरे लिये तो जैसा राम वैसा ही भरत है। रामचन्द्र ऐसा सपूत है कि जितना अपनी माता कौशल्याको नहीं मानता उससे कहीं बढ़कर मुझे मानता है। भाइयोंके साथ उसका जैसा भाव है वह दुनियामें कहीं नहीं देखा जाता। ऐसे रामके विषयमें तू ऐसी अप्रिय बातें कहती है? ख़बरदार, चुप रह ! अगर फिर यह बात मुँहसे निकली कि मैं तेरी जिह्वा उखाड़ डालूँगी।"

कैकेयीकी बात सुन मन्थराकी सारी चौकड़ी भूल गई; पर थोड़ी देर बाद वह फिर ऐसी नोनमिर्च लगी दुष्टता भरी बातें कहने लगी, जिन्हें सुनते ही कैकेयीका मन एकबार ही फिर गया। जिन रामचन्द्रको वे अपने बेटेसे बढ़कर मानतीं थीं उन्हें वे अपना घोर शत्रु समझने लगीं। पापिन् जो बात चाहती थी वही हुई। इसके बाद दोनों बैठकर सलाह करने लगीं। मन्थराकी मन्त्रणाके अनुसार कैकेयी फटे पुराने वस्त्र पहिन, महा भयङ्कर रूप धारण कर कोप-भवनमें जा बैठीं।

पुत्रके राज्याभिषेककी सब तैयारी कर प्रसन्नचित्तसे राजा दशरथ महलमें आये। उन्होंने आशा की थी कि वे सब रानियोंको प्रसन्न पावेंगे। पर उनकी वह आशा पूरी नहीं हुई। उन्होंने कैकेयीके घरमें

जाकर देखा कि वे क्रुद्ध सर्पिणीकी भाँति लाल लाल आँखें किये लम्बी साँसें छोड़ रही हैं। राजाने, उनका यह विकट वेश देखकर, उनसे उनके असाधारण कोपका कारण पूछा। मन्थराके सिखाये अनुसार बहुत कुछ इधर उधर करनेके बाद वे बोलीं, "महाराज! देवासुर-संग्राममें जो जो बातें हुई थीं उन्हें याद कीजिये। जिस समय आपके रथका पहिया टूट गया और मैंने अज्ञात भावसे आपकी प्राण-रक्षा की थी, उस समय आपने मुझे जो दो वर देने कहे थे उस प्रतिज्ञाको स्मरण कीजिये। इस समय मैं आपसे वे ही दोनों वर लिया चाहती हूँ। पहिला वर यह है कि रामके राज्याभिषेककी जो तैयारी हो रही है उसीसे मेरे बेटे भरतका अभिषेक कीजिये और दूसरा वर यह है कि आप रामको आज्ञा देवें कि वह चीर वसन पहिन कर तापस-वेशमें चौदह वर्षतक बनवास करे। यदि सत्यकी रक्षा करना चाहते हो तो मेरी प्रार्थना पूरी कीजिये। महात्माओंका कथन है कि सत्यके समान दूसरा धर्म नहीं है। सत्यसे विचलित होनेवालेकी सद्गति नहीं होती। अतएव सत्यकी रक्षाके साथ ही साथ आप अपने कुलकी मर्यादाकी भी रक्षा करें।"

जो कभी सोचा भी नहीं था वही हुआ। राजा कैकेयीके मुँहसे ऐसी वज्रवाणी सुननेकी आशा नहीं

करते थे। उन्होंने पहिले तो सोचा कि दिल्लगी है; लेकिन पीछे जब उन्होंने जाना कि यह उसके हृदयसे निकली हुई बात है तब "हा राक्षसी!" कहकर मूर्च्छित हो गिर पड़े। मूर्च्छा टूटनेपर कैकेयीकी वह दलितफणा नागिनीकीसी भयावनी मूर्त्ति देखकर, वे डरकर फिर मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छा भङ्ग होनेपर बोले, "री दुष्टे! रामने तेरी क्या बुराई की है जो तू इस प्रकार उसका अनिष्ट करनेका तैयार हुई है? राम जैसा अपनी माका आदर करता है वैसा ही तुम्हें भी मानता है इतने पर भी तुम क्यों ऐसा कर रही हो? जो हो, रामके सुन्दर गुणोंकी प्रशंसा सारा संसार करता है। केवल तुम्हारे ही कहनेसे मैं रामको नहीं परित्याग कर सकता। मैं कौशल्या, सुमित्रा, राज्य, सम्पद् यहाँ तक कि अपने प्राण भी त्याग कर दे सकता हूँ; पर पितृ-भक्त रामको एक मुहूर्त्तके लिये भी अपनी आँखोंकी ओट नहीं होने दूँगा। मैं तुम्हारे चरणोंपर माथा नवाता हूँ। तुम मुझपर दया करके यह मन्द अभिप्राय त्याग दो।"

इसी प्रकार महाराज दशरथ कभी क्रोधके आवेशमें आकर कैकेयीका तिरस्कार करते, कभी सर नीचा कर दयाकी भिक्षा माँगते और कभी अपनेको धिक्कारने लगते थे। सारी रात ऐसे ही बीत गयी—कैकेयीका

हठ दूर नहीं हुआ। दशरथ महाराज सोचने लगे कि "मेरे कहनेसे यदि रामचन्द्र बन न जाय तब तो मेरा मनोरथ सिद्ध होगा; लेकिन भला राम ऐसा कब करने लगा? वह तो मेरे मुँहसे आज्ञा निकलते ही बन जानेको तैयार हो जायगा। और वह यदि बनको गया तो सब लोग मेरी निन्दा करने लगेंगे इससे मेरा मर जाना ही अच्छा है। मेरे मर जानेसे कौशल्या और सुमित्रा भी जल मरेंगी। इसीलिये सारी अयोध्या श्रीभ्रष्ट हो जायगी।" यही सब सोचते सोचते क्रोधके मारे काँपती ज़बानसे दशरथने कहा, "री पापीयसी! मैंने अग्निको साक्षी देकर तुम्हारा जो हाथ पकड़ा था क्या उसका यही बदला है? यदि है, तो मैं उस प्रतिज्ञाको भूल जाता हूँ और तुम्हारे ही साथ तुम्हारे पुत्रको भी परित्याग करता हूँ।"

रात बीत गयी। भोर हुआ। चारों ओरसे भैरवीकी गान-तरङ्गें सुन पड़ने लगीं। राज-सभामें वशिष्ठ प्रभृति ऋषिवर्ग और मन्त्री आदि दरबारी लोग आ मौजूद हुए। ऋषियोंने सुमन्त्रको अभिषेककी पूरी तैयारी करने और शीघ्र ही राजाको बुला लानेकी आज्ञा दी। राजाके शयन-गृहके पास जा निद्रा भङ्गकी स्तुति पाठ करते हुए सुमन्त्र बोले, "महाराज, अभिषेककी सब तैयारी हो चुकी है। वशिष्ठ आदि

सब लोग आ गये हैं। आपकी ही देर है। आपके जाते ही कार्य्यारम्भ कर दिया जायगा।" सुमन्त्रकी बातें सुन राजाका शोक दूना हो गया। उनके मुँहसे कोई बात नहीं निकली। तब कैकेयीने कहा, "राम-राज्याभिषेकके आनन्दमें मग्न रहकर राजा आज रात भर सोये नहीं हैं अतएव इस समय निद्रित हो रहे हैं। तुम जाकर शीघ्र ही रामचन्द्रको बुला लाओ।" सुमन्त्र बोले, "मैं बिना राजाकी आज्ञा पाये नहीं जा सकता।" यह सुन राजाने कहा, "मुझे रामको देखनेकी बड़ी इच्छा है। जल्द जाकर बुला लाओ।" राजाज्ञा पा, सुमन्त्र जाकर रामचन्द्रको बुला लाये।

आते ही रामचन्द्रने बड़े भक्तिभावसे पिता और माताकी चरण-वन्दना की। शोकाकुल राजा दशरथ रामको देख आँखोंमें आँसू भरकर केवल 'राम' भर कह सके। रामचन्द्रने सोचा, "प्रति दिनकी भाँति आज पिता मुझसे क्यों नहीं बोलते? वे क्रुद्ध होते तो भी मुझे देख प्रसन्न हो जाया करते थे। आज मुझे देख इन्हें विषाद क्यों होता है?" यही सोच मलिन मुख किये दीनभावसे अपनी मातासे पूछने लगे, "माता! मैंने अनजानेमें न जाने कौनसा अपराध किया है कि पिताजी मुझपर क्रुद्धसे हो रहे हैं। यदि मुझसे कोई भूल चूक हो गयी हो तो आप क्षमा करा दें।

पिताजी सदा मेरे ऊपर दया रखते थे पर आज बोलते तक नहीं; इससे मुझे बड़ी व्याकुलता हो रही है। माता! महाराजका शरीर कैसा है? हमारे प्राण-प्रिय भरत और लक्ष्मण आदि तो कुशल से हैं न? तब फिर महाराजको काहेका सोच है? यदि पिताजी मुझपर क्रुद्ध हों तो मैं क्षणभर भी जीना नहीं चाहता। हे देवी! अगर पिताके कष्टका कारण आप जानती हों तो कह सुनावें।"

कैकेयी अबके बोली, "तुम्हारे ऐसे आज्ञाकारी पितृ-भक्त पुत्र पर महाराज कभी रंज होंगे, ऐसा सोचना भी नहीं। महाराजका एक गुप्त अभिप्राय है, उसे लज्जाके मारे वे तुम्हारे सामने नहीं कहते। वे तुम्हें प्राणोंसे अधिक मानते हैं इसीसे वैसी कठोर बात तुमसे कहनेका उन्हें साहस नहीं होता।" कैकेयीकी बात सुन रामचन्द्रने कहा, "माता! यदि पिताजी कहें तो मैं धधकती आगमें कूद सकता हूँ, हँसते २ हलाहल विषको पान कर सकता हूँ। पिताजीकी आज्ञा होनेपर अगाधसमुद्रमें प्राण विसर्जन करनेको भी मैं हर घड़ी तैयार हूँ। आप निःशङ्क होकर कहें वह कौनसी बात है? मैं पितृ-आज्ञाका अवश्य पालन करूँगा।"

कैकेयीने कहा, "हे राघव! देवासुर-संग्राममें,

महाराजका रथ टूट जानेपर मैंने उनके प्राणोंकी रक्षा की थी, उस समय महाराजने मुझे दो वर देने कहे थे। इस समय मैंने इनसे वेही दोनों वर माँगे हैं—एक तो भरतको राज्य और दूसरा तुम्हारा चौदह वर्षतक तपस्वी-भेषमें बनवास। हे कुलतिलक! यदि तुम पिताके वाक्यको पूरा करना चाहते हो तो चोदह वर्ष तक बनवासी होना स्वीकार करो ; नहीं तो तुम्हारे पिताकी प्रतिज्ञा झूठी हो जायगी।"

कैकेयीकी वे मृत्युकीसी भयङ्कर बातें सुन, रामचन्द्र कुछ भी दुःखित नहीं हुए। हँसते हुए बोले, "मैं अभी पिताकी आज्ञापालन करनेके लिये चीर बल्कल धारण कर बनको जाऊँगा। महाराज! क्या इसीलिये मुझसे नहीं बोलते? वे मेरे पिता, गुरु और हितचिन्तक हैं। वे जो कहेंगे, मैं कभी उससे जी नहीं चुरानेका। फिर भरत भाईके राज्याभिषेककी बात कहनेमें उन्हें क्यों संकोच होता है? यदि मैं राजा होता तो अयोध्या-नरेश कहलाता ; पर भरत भय्याके राजा होनेपर मैं अयोध्या-नरेशका बड़ा भाई कहलाऊँगा, यह तो मेरे लिये परम आनन्दकी बात है। पर कुछ खेद केवल इसी बातका होगा कि उनका अभिषेक अपने इन अभागे नेत्रोंसे न देख सकूँगा। परन्तु हाँ, चौदह वर्ष बनमें व्यतीत करनेपर जब लौटकर

अयोध्यामें फिर आऊँगा तब भरतको भली भाँति प्रजापालन करते हुए देखकर अपने नयन सार्थक करूँगा। अतएव हे जननी! आप महाराजको समझा दें कि क्यों वृथा शोक करते हुए पृथ्वीको आँसूओंसे तर कर रहे हैं?"

रामकी ये उदारता भरी बातें सुन राजा दशरथ बड़े ही दुःखित हुए और धीरज छोड़कर रोने लगे। उसी घड़ी पिता दशरथ और माता कैकेयीके पैर छू रामचन्द्र बाहर चले आये। उस समय रामचन्द्रके मुखपर किसीने दुःख अथवा चिन्ताकी छाया तक नहीं देखी। किसीने नहीं जाना कि अभी अभी सारी अयोध्यापर वज्रपात हो गया है! सबने समझा कि राज्याभिषेकके ही सम्बन्धमें कुछ उपदेश देनेके लिये राजाने रामको बुलाया होगा। रामचन्द्रने वहींसे अपनी माता कौशल्या और लक्ष्मणकी माता सुमित्राको प्रणाम किया और सारा हाल सुनाकर विदाई माँगी। सबके नेत्रोंसे आँसू चलने लगे। रामचन्द्र सबको समझाते हुए हर सूरतसे बन जानेके लिये तैयार हो गये। नगरके लोगोंने बहुत कुछ समझाया, पर रामचन्द्र किसी प्रकार अयोध्यामें ठहरनेको राज़ी नहीं हुए। तब सारे नगरनिवासियोंने स्वयं रामचन्द्रके साथ बन जानेकी ठानी। लेकिन बहुत समझा

बुझाकर रामचन्द्रने सबको लौटा दिया। पर सीता और लक्ष्मण न माने वे संग ही चले। सारा नगर एक बार हाहाकार शब्दसे गूँज उठा। धन्य राम! धन्य तुम्हारी पितृ-भक्ति!! केवल पिताके बचनको पूरा करनेके लिये तुमने सारी सम्पदाओंको लात मार चौदह वर्षके लिये बन बन भटकना स्वीकार किया!!!
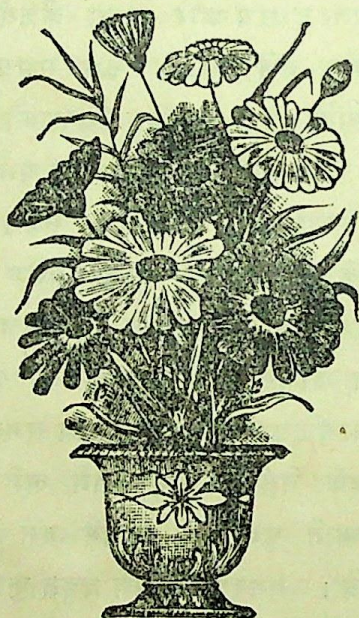
२ भीष्म पितामह।

आ जसे कई हज़ार वर्ष पहलेकी बात है, कि हस्तिनापुरमें शान्तनु नामके एक राजा थे। उनका व्याह गङ्गा महारानीके साथ हुआ था। उनके गर्भसे राजाके एक लड़का हुआ, जिसका नाम पड़ा देवव्रत। देवव्रतको पैदाइशके बाद गङ्गा महारानी स्वर्गको सिधारीं और राजा अपने दूसर लड़केको बड़े लाड़ प्यारके साथ लालन पालन करने लगे। देवव्रत कुछ सयाने होनेपर अपने पिता होके समान तेजस्वी हुए। कम उमरमें ही उन्होंने अपना नाम चारों ओर फैला दिया। अपने गुणवान् पुत्रको देख राजा थोड़े ही दिनोंमें अपनी पत्नीका शोक भूल गये। उन्होंने मन ही मन सोचा, अब पुनः विवाहके बन्धनमें नहीं पड़ूँगा। सयाना होनेपर देवव्रतको ही राज्यका सारा भार सौंपकर, आप तपस्या करने चला जाऊँगा। पर बीच बीचमें एक नयी तरहकी चिन्ता उन्हें व्याकुल करने लगी। वे सोचते—इस संसार में सभी कुछ पानीके बुलबुलेकी भाँति क्षणस्थायी है। मेरे केवल यह एक बेटा है। ईश्वर न करे, पर यदि कहीं यह नहीं रहे तो हमारा

वंश ही सूना हो जायगा। मैं अपना अन्तसमय शान्ति-के साथ बिताना चाहता हूँ, सो भी नहीं हो सकेगा। यह चिन्ता उन्हें सदा व्यग्र किया करती थी।

एक दिन महाराज शान्तनु यमुना किनारे शिकार खेलने गये। वहाँ एक प्रकारकी बड़ी अच्छी सुगन्धि फैल रही थी। वह गन्ध कहाँसे आ रही है, यह देखनेके लिये जब कुछ दूर गये तब उन्होंने एक परम रूपवती मल्लाहकी लड़कीको देखा। उस कन्याको बड़ी रूपवती और गुणवती जान, राजाने उसके पितासे कहा कि अपनी लड़कीका व्याह मेरे साथ कर दो।

राजाकी बात सुन मल्लाहने कहा,—"पृथ्वीनाथ; जब कन्या जन्मी है तब उसका व्याह तो करना ही होगा और आप ऐसे पृथ्वीपालक उसके साथ व्याह करना चाहते हैं, यह तो मेरा परम सौभाग्य है। लेकिन महाराज! मेरी एक अभिलाषा है उसे यदि आप पूर्ण करें तो मैं उसे आपको दे दूँगा। वह अभिलाषा यह है कि मेरी कन्याके गर्भसे जो पुत्र हो वही राज्य पावे और कोई नहीं।" राजाको उसकी बात सुन चक्कर आने लगा। वे मुँह इतनासा करके हस्तिनापुरको लौट आये।

एक समय देवव्रत पिताके पास आ उनको उदास देख बोले,—"हे पिता! आपकी सारी प्रजा आपसे

सन्तुष्ट है, राज्यमें किसी प्रकारकी गड़बड़ नहीं है तौभी आप इन दिनों क्यों इतने उदास रहते हैं ?"

बेटेकी बात सुन शान्तनुने कहा,—"बेटा! मैं किस लिये इतना चिन्तित रहता हूँ सो सुनो। मेरे वंशमें केवल तुम्हीं एक पुत्र हो, पर मनुष्यका सब कुछ क्षण-भङ्गुर है। मेरे मनमें बार बार, न जाने क्यों, यही चिन्ता उठती है कि अगर कहीं कुछ तुम्हारा अनिष्ट हो तो मेरा वंश ही सूना हो जायगा। जिसके एक ही लड़का है वह एक प्रकारसे निःसन्तान ही है। लेकिन तुम अकेले ही सौ बेटोंसे बढ़कर हो, इसलिये अब मैं व्याह नहीं करूँगा।" यह सुन देवव्रत बड़ी चिन्तामें पड़े। मन्त्रीके पास जाकर उन्होंने राजाका शोक-वृत्तान्त कह सुनाया। मन्त्रीने देवव्रतसे मछुएकी कन्याकी सारी कथा कह सुनायी। यह समाचार पाकर देवव्रत अपने यहाँके सब राजकर्मचारियोंको साथ ले स्वयं पिताके निमित्त कन्या माँगनेके लिये मछुएके घर गये।

राजकुमारको आया देख धीवरने बड़े आदरसे सबको बैठाया। सबके बैठ चुकनेपर देवव्रतने उस धीवरसे कहा,—"तुम अपनी लड़की हमारे पिताको दे दो।"

यह सुन धीवर बोला,—"हे महाराज शान्तनुके

कुलके उज्ज्वल करनेवाले! आप ही विचारकर देखिये, यह सम्बन्ध अपनी खुशीसे कौन छोड़ सकता है? पर जब मेरी पुत्रीके लड़का होगा तब आपके परिवारमें बड़ा झगड़ा छिड़ेगा। यही सोचकर मैं विवाह कर देनेपर राज़ी नहीं हुआ। मैं चाहता हूँ कि मेरा ही नाती राज्य पावे। लेकिन जिस घड़ी आप हथियार लेकर उठोगे, उस समय इस त्रिलोकीमें कौन ऐसा है जो आपके सम्मुख खड़ा हो सकेगा? आपके रञ्ज होनेपर क्या देवता—क्या मनुष्य—सभी दुम दबाकर भाग जायँगे। यही इस व्याहमें बड़ी भारी एक अड़चन है।"

पितृ-भक्त देवव्रतने कहा, "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी पुत्रीके पेटसे जो लड़का पैदा होगा वही राज्य पावेगा। आज ही से मैं उसका हक़ उसको दे डालता हूँ।" जालजीवीने यह बात सुन कहा, "हे गङ्गा-पुत्र! आप जैसे महात्माकी बात कभी नहीं टलेगी यह मैं समझता हूँ; लेकिन आपके लड़के वग़ैर: तो यह सब नहीं मानेंगे।"

पितृ-हितैषी देवव्रतने दास-राजका मतलब समझ सबके सामने प्रतिज्ञा की, कि मैं राज्यका हक़ पहिले ही छोड़ चुका हूँ। अब प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस जन्ममें कभी विवाह नहीं करूँगा। आजसे मैं कठोर

ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करता हूँ । देवव्रतकी प्रतिज्ञा सुन वह मल्लाह बड़े आश्चर्य्यमें आ गया। सारी दर्शक-मण्डली इस अलौकिक कार्य्यको देख चकपका गयी। ऐसी विकट प्रतिज्ञा करने ही के कारण उसी दिनसे उनका नाम "भीष्म" हो गया। पिताकी प्रसन्नताके लिये, राज्यके सच्चे हक़दार होनेपर भी, उन्होंने जन्मभरके लिये राज्यका लोभ और संसारका सुख विसर्जन कर दिया।

इसके बाद सत्यवतीका व्याह शान्तनुके सङ्ग हुआ। सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य्य नामके दो लड़के पैदा हुए। चित्राङ्गद तो लड़कपनमें ही पर-लोक सिधारे : इससे पिताके सिंहासनपर विचित्रवीर्य्य ही बैठे। इन्हें कोई सन्तान नहीं थी ; अतएव इनके मरने पर राज्यका सिंहासन सूना हो गया। पर भीष्मने सिंहासन छूआ तक नहीं। उन्होंने विचित्रवीर्य्यके कृत्तिम (बनावटी) पुत्र धृतराष्ट्र और पाण्डुको राज्य पर बैठाया और स्वयं उनके मन्त्रीकी तरह राज-काज सम्हालते रहे। जन्मान्ध धृतराष्ट्र और ज्ञानान्ध दुर्यो-धन आदिके अनेकानेक अन्याय करनेपर भी भीष्मने अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग होने नहीं दी। उन्होंने ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की, जिससे यह ज़ाहिर हो कि राज्यपर उनको भी कुछ अधिकार है। वे केवल मुँह

होसे कहकर समझाते रहे। प्रतिज्ञा भङ्ग होनेके ही डरसे, पाण्डव-पत्नी द्रौपदीकी वैसी दुर्द्दशा होती देख कर भी उन्होंने चूँ तक नहीं की।

धन्य भीष्म! और धन्य तुम्हारी पितृ-भक्ति!! तुम्हारे समान आदर्श पुत्र न जन्म लेते तो इस संसारसे पितृ-भक्ति कभीकी चली गयी होती। पर नहीं; तुम्हारे ही समान पितृ-भक्त पुरुषोंका स्मरण कर, आज इस गिरी दशामें भी भारत-सन्तान इस वाक्यपर विश्वास रखती है :—

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमन्तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः

अर्थात् पिता ही धर्म, पिताही स्वर्ग और पिता ही परम तप हैं। जिस मनुष्यकी अपने पितापर प्रीति रहती है उस पर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं।
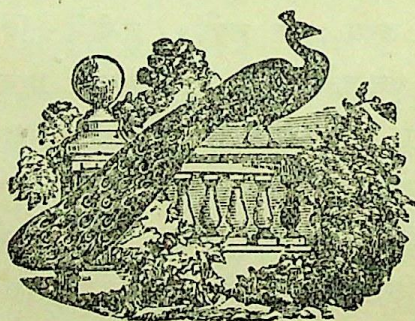
भाईभाईकी प्रीति ।

१ लक्ष्मण ।
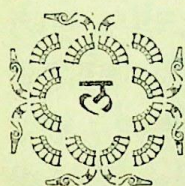
लक्ष्मणजीको बड़ा आनन्द है कि उनके बड़े भैया रामचन्द्र राजा होंगे। उनके हर्षकी सीमा नहीं है। जिन रामचन्द्रको वे प्राणोंसे भी अधिक मानते हैं, उन्हींके राज्याभिषेककी बात श्रवण करके भी उनका आनन्द सीमा ही के भीतर रहे, यह कैसे हो सकता है? उनको रातको सोना, दिनको खाना नहीं रुचता, रात दिन यही धुन लगी रहती है कि क्योंकर अभिषेक सुन्दरताके साथ सम्पन्न हो जायगा।

वे बड़े तड़के ही उठकर सब सामग्रियाँ संग्रह करने और आये हुए लोगोंकी अभ्यर्थना करनेमें लगे। लेकिन बहुत देर होजानेपर भी जब उन्होंने देखा कि अभी तक न तो महाराज दशरथका पता है और न रामचन्द्रका ही। तब वे बहुत ही व्यग्र हो, कौशल्याके पास उन्हें ढूँढ़ने गये।

दूर ही से रामचन्द्रको आते देख प्रसन्न हो लक्ष्मणजी बोले, "आर्य! शुभघड़ी बीती जाती है आप क्यों इतना विलम्ब कर रहे हैं? पिताजी कहाँ हैं? क्या वे किसी माङ्गलिक कार्य्यमें लगे हैं?" लक्ष्मणजी ये बातें कह ही रहे थे कि इसी समय उन्हें कौशल्याकी रोदन-ध्वनि सुनाई पड़ी। सुनते ही उलटे पाँव उनके पास गये और वहाँ रामके बन जानेकी बात सुनी। सुनते ही उनका सारा शरीर क्रोधसे थरथर काँपने लगा। वे लाल लाल आँखें किये, दाँत कटकटाते हुए, गम्भीर स्वरसे बोले, "किसकी इतनी सामर्थ्य है जो रामचन्द्रको बनवास देगा? मैं अभी उन्हें सिंहासनपर बैठाऊँगा। यदि अयोध्याके रहनेवाले इसका विरोध करेंगे तो उसी दम मैं अयोध्याको मनुष्यसे सूनी कर दूँगा। अकेला ही मैं सैकड़ों नरपालोंको हरा सकता हूँ।"

लक्ष्मणका यह क्रोध देख रामचन्द्र धीमे स्वरसे बोले, "लक्ष्मण! मेरे प्रति तुम्हारी जो प्रीति है वह मैं भली भाँति जानता हूँ और तुम्हारे बल विक्रमका फिर क्या पूछना? लेकिन धर्म विरुद्ध काम करना मैं अच्छा नहीं समझता। पिता और गुरुजनकी बात नहीं मानना घोर अधर्म है। मेरी माता कैकेयीने पिताकी आज्ञानुसार मुझे बन जानेकी अनुमति दी

है अतएव मैं अवश्य ही बनको जाऊँगा। मैं पिताकी बात नहीं टाल सकता।"

नीचा सिर किये हुए रामको ये बातें लक्ष्मणने सुनीं। उनकी बात समाप्त होजानेपर एक लम्बी साँस ले वह बोले, "आर्य! आप धर्म-हानिके भयसे ऐसा कह रहे हैं पर यह आप निश्चय जानिये कि इसमें ज़रा भी धर्मकी हानि नहीं है। राज्य आपका है, आप ही इसके उत्तराधिकारी हैं, उस अधिकारको बिना अपराध छीन लेना क्या धर्मसङ्गत हुआ है? आपने कौन ऐसा अपराध किया, आपमें कौन ऐसा दुर्गुण देखा गया, जिसके कारण पिताजी आपको राज्यसे निकाल बनको भेज रहे हैं? अवश्य ही इसमें कोई गूढ़ रहस्य है। अतएव आप व्यर्थ धर्म-हानिका भय करते हैं। जब इस प्रकार धर्मकी ताण्डवलीला हो रही है तब मेरा कार्य किसी प्रकार अधर्म कहने योग्य नहीं है। पिताकी बात छोड़ दीजिये, यदि तीनों लोकके लोग इकट्ठे हो आपके राज्याभिषेकमें विघ्न डालना चाहेंगे तो मैं न होने दूँगा। मैं सहस्रों दुःख क्लेश सह सकता हूँ पर आपकी प्रतिष्ठाकी हानि मुझसे नहीं देखी जाती।" यह कहते कहते लक्ष्मणकी आँखोंसे बेरोक आँसूओंकी धारा बहने लगी। उनकी आँखोंके आँसू पोंछते हुए भक्तवत्सल रामचन्द्र उन्हें समझाने लगे कि देखो,

यह संसार अनित्य—धोखेकी टट्टी—मायाकी हाट है। केवल धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है, पिताकी आज्ञा पालन करना मनुष्यका परम धर्म है। मैं कभी इस सनातन धर्मके विरुद्ध नहीं चल सकता। अतएव हे लक्ष्मण! तुम यह व्यर्थ का शोक छोड़ दो।"

रामचन्द्रकी दृढ़ता देख लक्ष्मण का क्रोध दब गया; तब वह रो रो उनसे प्रार्थना करने लगे कि आपके अयोध्यामें नहीं रहनेसे यह सारी नगरी श्रीभ्रष्ट हो जायगी, पिताका यह विशाल साम्राज्य चौपट हो जायगा। लेकिन उनके हज़ार कहने सुनने पर भी जब रामचन्द्र अयोध्यामें रहने पर राज़ी नहीं हुए तब लक्ष्मण बोले, "हे भैया! यदि आपको बनवास ही पसन्द है तो चलिये। मैं भी आपके साथही साथ चलूँगा। आप बनको चलें, मैं धनुषबाण ले आपके आगे आगे चलता हूँ।"

यह सुन रामचन्द्र उन्हें समझाने लगे कि तुम यहाँ रह जाओ, हमारे तुम्हारे दोनों ही के चले जानेसे अयोध्या एकदम बिना राजाके हो जायगी। पर लक्ष्मणने उनकी एक न सुनी, कहा—"आप यह निश्चय जानें, मैं सुख सम्पदा नहीं चाहता—स्वर्ग अथवा अमरत्वकी मुझे चाह नहीं है। मैं केवल यही चाहता हूँ कि मेरा यह जीवन आपके चरणोंकी ही सेवा करते हुए

बोते। आप जहाँ हैं वहीं मेरे लिये स्वर्ग है। यदि आप इस समय आगमें कूदना चाहें तो आगे मैंही उसमें कूदूँगा। अगर आप समुद्रको लाँघना चाहेंगे तो पहिले लक्ष्मण हो उस अथाह सागरको सन्तरण करेगा।" यह कह वीर शिरोमणि लक्ष्मण चीर वसन धारणकर हर सूरत से रामके साथ बन जानेको तैयार हो चल खड़े हुए। रामचन्द्र भी उनके साथ जानेमें आपत्ति नहीं कर सके।

भ्रातृ-भक्त लक्ष्मण, चौदह वर्षतक, ब्रह्मचारीके समान बन बन घूमते हुए, श्री राम जानकी की सेवा करते रहे।
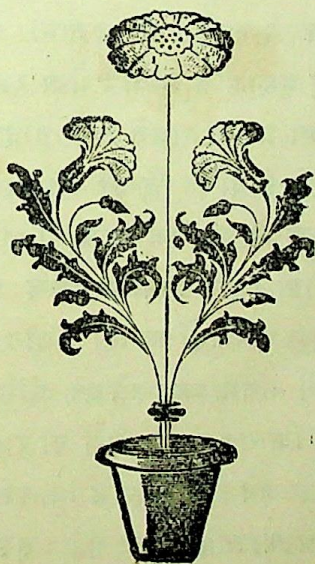
२ भरत।

राम, लक्ष्मण और सीताके बन जाने पर शोकाकुल राजा दशरथ ने प्राण त्याग किया। कैकेयी के पुत्र भरत अपने छोटे भाई शत्रुघ्नके साथ मामाके घर गये हुए थे। राजाकी एकाएक मृत्यु हो जानेसे, महर्षि वशिष्ट और मन्त्रियोंने दूत भेज कर उन्हें तुरत ही बुलवा लिया। घर आकर पिताकी मृत्यु और राम लक्ष्मणके बन-गमनका वृत्तान्त सुनकर उन्होंने अपनी मातासे पूछा, "हे माता! भैया रामचन्द्रने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुमने उन्हें चौदह वर्षके लिये देश-निकाला दे दिया? तुमने क्या यह सोच रक्खा था कि रामचन्द्रको बन भेज भरत को राज्य दिलानेसे भरत सुखी होगा? महात्मा रामचन्द्र पर मेरी कैसी भक्ति है सो क्या तुम नहीं जानतीं? हाय! न जाने भैया रामचन्द्र अपने मनमें क्या सोचते होंगे? वे अवश्य समझते होंगे कि यह कार्य्य मेरी ही रायसे किया गया है। माता! जब जब मैं इस बातको सोचता हूँ तब तब मेरी आत्मा काँप उठती है। तुमने रामचन्द्रको

बनवास दे मुझे भी कौड़ीका तीन कर दिया। मैं इस समय पितृहीन और भाइयोंसे बिछुड़ा हुआ हूँ तिसपर सभी लोग मुझे नीची ही निगाहसे देखते होंगे। हज़ार कहने पर भी, लोग यही समझेंगे कि माँ बेटे दोनों ही ने मिल कर रामको चलता किया है। तुमने जो सोचा था सो कभी होनेका नहीं। मैं अभी बन जाकर रामचन्द्रको बुला लाऊँगा।"

भरत और शत्रुघ्न इसी प्रकार रामचन्द्रके वियोगमें विलाप करते हुए कैकेयी का तिरस्कार कर ही रहे थे कि इसी समय कुबड़ी मन्थरा वहाँ आयी और अपनी शेखी बघारने लगी कि मेरे ही बुद्धि कौशलसे यह शुभ कार्य हुआ है। शत्रुघ्न उस कुबड़ी दासीको सारे अनर्थों की जड़ समझ कर उसका झोंटा पकड़ उसे मारने लगे। वह पापीयसी प्राणके भयसे चिल्ला चिल्ला कर रोने लगी। उसकी अधमरी सी देख भरत बोले, "हे शत्रुघ्न! स्त्री-हत्या करने से महात्मा रामचन्द्र कभी हम लोगोंको ग्रहण नहीं करेंगे; इसीलिये मैंने माताको क्षमा कर दिया है। अतएव तुम भी कुबड़ीको छोड़ दो।" भरतकी आज्ञानुसार शत्रुघ्नने उस चाण्डालिनी को छोड़ दिया।

इसके बाद शत्रुघ्नके साथ भरतजी कौशल्याके पास गये। वहाँ पहुँचते ही उनकी आँखोंसे अश्रु-धारा बहने

लगी। कहीं कौशल्याजी यह न समझती हों कि भरतकी ही सलाह सम्मतिसे कैकेयीने यह अनर्थ किया है इसलिये वे नाना प्रकारकी शपथें खाने लगे। इन शपथोंको सुन, कौशल्या का सन्देह भरतके ऊपरसे दूर हुआ।

किसीके समझाने बुझाने से भरतजीका शोक दूर होता नहीं दिखाई दिया। उनको इस प्रकार गहरे शोकमें डूबा हुआ देखकर महर्षि वशिष्ट ने कहा, "हे भरत! समय बीता जाता है—दिनपर दिन निकले चले जाते हैं। इस समय शोक त्यागकर महाराजकी और्द्ध-दैहिक क्रियाएँ करो।" पुरोहितकी आज्ञानुसार भरतजीने दशरथ महाराजका श्राद्धादि कार्य्य सम्पन्न किया।

चौदहवें दिन, सवेरे ही सब राजकर्मचारियोंने इकट्ठे होकर भरतसे कहा, "हे राजकुमार! आप अब राजगद्दी पर बैठें। कोई राजा न होने पर भी अब तक प्रजाने कोई बुरा काम नहीं किया है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है; किन्तु अब अधिक विलम्ब करना उचित नहीं है। सब लोग आपके अभिषेककी बाट जोह रहे हैं। आप शीघ्र गद्दीपर बैठ कर हमलोगोंका पालन करें।" उनकी ऐसी बातें सुन भरत बोले,—"आप लोग क्यों ऐसी बातें करते

हैं? भैया रामचन्द्र हमलोगोंके बड़े भाई हैं। वेही राजा होंगे। हमलोग तो उनके सेवकमात्र हैं। मैं अभी बनमें जाकर उन्हें लिवा लाता हूँ। आप लोग शीघ्र बन जानेकी तैयारी करें।"

राजकुमार भरतकी ये बातें सुन सब लोगोंकी आँखोंसे आनन्दके आँसू ढरकने लगे। सारे उपस्थित लोग उनको साधुवाद देते हुए बोले, "हे भरतजी! इस पृथ्वीमें आप ही धन्य हैं। इस संसारमें कौन ऐसा पुरुष है जो आसानीसे हाथमें आये हुए राज्यको तिनकेकी तरह समझकर छोड़ सकता है? हे राजनन्दन! आपका यह स्वार्थत्याग—यह भ्रातृ-भक्ति संसारमें सदा गायी जायगी। आपकी यह कीर्त्ति सूर्य्य चन्द्रमा जब तक आकाशमें रहेंगे तब तक मिटनेकी नहीं।"

तुरन्त ही यह बात घर घर फैल गयी कि भरत रामचन्द्रको लौटानेके लिये बन जाते हैं। सभी अयोध्याके लोग उनके साथ जानेको तैयार हो गये। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा आदि स्त्रियों, वशिष्ठ प्रभृति बूढ़े लोगों और अन्यान्य कर्मचारियों तथा अयोध्यानिवासियोंके साथ शत्रुघ्नको संग ले जटा और चीर बल्कल पहिने हुए, भरतजी श्री रामचन्द्रके पास चले।

उस समय राम, लक्ष्मण और सीता तापस-वेषमें चित्रकूटमें वास करते थे। वहाँ पहुँचनेपर जब भरतजीने उन लोगोंको देखा तब उनके मनमें बड़ा सोच हुआ। वे सोचने लगे, "हाय! जो महाराज रामचन्द्र महामूल्य वस्त्राभूषण पहिनकर मन्त्रियोंके साथ राज-सभामें बैठते, वे ही आज चीर बल्कल धारण किये मृगोंके साथ बैठे हैं!" यही सब सोचते सोचते उनका गला भर आया। आँखें डबडबा आयीं। "आर्य"!" इस शब्दके सिवाय और कोई बात उनके मुँहसे नहीं निकली। वे रामचन्द्रको प्रणाम करनेके लिये भूमि पर गिर पड़े।

चीरवसन पहिरे हुए, जटाधारी भरतको रामचन्द्रने पहिले तो नहीं पहिचाना; फिर पहिचान लेनेपर उन्हें उठाकर कण्ठसे लगा लिया। तदनन्तर रामचन्द्रने पूछा,—"हे भाई! तुम राज्य छोड़ यह चीरवसन क्यों धारण किये हुए हो? हमारी माताएँ और गुरु आदि कैसे हैं?"

बातका सीधा उत्तर दिये बिना भरत हाथ जोड़ कहने लगे, "हे भैया! मेरी माताकी तो स्त्रीकी बुद्धि ठहरी, उन्होंने जो अन्याय किया सो तो हुई है; लेकिन पिताजीने भी बड़ेको छोड़ छोटेको राज्य दे दिया, यह बड़ा अनुचित हुआ है। इसीलिये मैं राज्यपर

कभी नहीं बैठ सकता। भैया रामचन्द्र! आप क्या भरतको ऐसा कुटिल समझते हैं कि आप तो बन बन मारे मारे फिरें और मैं गर्वके साथ सिंहासनपर बैठूँ? आप यह निश्चय जानिये मरनेपर भी भरतसे ऐसा नहीं होनेका। हे रघुवीर! आपके ही वियोगमें पिताजी परलोक सिधारे, माता और गुरु आदि सभी लोग मेरे साथ साथ आपके पास आये हैं। आप चलकर राज्यपर बैठें—मैं आपका सेवक हूँ, मेरा सिंहासनपर बैठना शोभा नहीं देता। भैया! सारी अयोध्या आपके बिना व्याकुल हो रही है। मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवा प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने इस छोटे भाई, शिष्य और दासके ऊपर अनुग्रह कर अयोध्याको लौट चलें; नहीं तो मैं भी लौटनेवाला नहीं। मैं भी लक्ष्मणके साथ साथ आपके पादपद्मकी सेवा करूँगा।" डबडबायी आँखोंसे इन बातोंको कहते हुए भरतने पुनर्वार रामचन्द्रके चरणोंमें मस्तक नवाया और ज़ोर ज़ोरसे रोने लगे। उनकी उस रोदन-ध्वनिसे सारी बनस्थली काँप उठी।

भरतके मुँहसे पिताके मरनेका हाल सुनकर रामचन्द्र बड़े व्याकुल और अधीर हो गये। बहुत देर तक विलाप कर उन्होंने भरतसे कहा, "हे भरत! मैं तुम्हें दोष नहीं देता, पर माताकी निन्दा करना

तुम्हारे ऐसे पुत्रके लिये उचित नहीं है। पिता अपने पुत्रको जो आज्ञा दें, उसे पालना ही पुत्रका काम है। अतएव महाराज मुझे और तुम्हें जो आज्ञा देकर मरे हैं उस आज्ञाका पालन करना ही हमारा तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम्हें वे अयोध्याका राज्य दे गये हैं इसलिये तुम राज्य करो और मुझे वे बनका राजा बना गये हैं अतएव दण्डकारण्यमें वास करना ही मेरा कर्त्तव्य है। प्यारे भाई! तुम इसमें आपत्ति (उज्र.) न करो।"

भरत बोले, "पिताने पहले आप ही को राज्य दिया था; पीछे मेरी माताको फुसलानेके लिये मुझे राज्य देनेकी बात कही; इसलिये वह राज्य आपका ही है, मेरा नहीं हो सकता।" रामचन्द्रने कहा, "हे भरत! जैसे समुद्रमें कुछ देरके लिये दो नावें इकट्ठी होती हैं और फिर तुरत ही अलग हो जाती हैं; उसी प्रकार बेटा बेटी, भाई बन्धु आदि भी समयपर हमसे बिछुड़ जाते हैं। इस बातको न समझनेके ही कारण निर्बोध मनुष्य अधर्म करते हैं। परन्तु मैं राज्यके लिये कभी पिताकी बात टालकर पाप नहीं बटोर सकता।"

भरतने कहा, "आपको पिताजीने बिना किसी दोषके ही बनवासी कर दिया, यह कभी उचित नहीं हुआ। यदि पितासे कोई बात अनुचित हो तो योग्य

पुत्रको उचित है कि उसका शोधन करे। अतएव हे भैया ! आप शत्रुघ्नको, कैकेयीको, मुझको, और अन्य लोगोंको प्राणदान देनेके लिये मेरी बात मान लें ; नहीं तो, आपके बदले, मैं ही बनवास कर पिताकी बात रखूँगा।

जावालि, वशिष्ठ आदि सभी लोगोंने भरतजीकी बातका अनुमोदन किया। तब रामचन्द्र बोले, "आप लोग युक्तिकी बात नहीं कहते। पिताजीने जीतेजी मुझे जो आज्ञा दी है, आज उनके मरनेपर, मैं उसकी उपेक्षा क्योंकर कर सकता हूँ ? मैं यह कभी नहीं चाहता कि अपने बदले किसी औरको बनवास करने दूँ। प्राण रहते पिताकी बातपर मैं हरताल नहीं दे सकता।" यह बात सुनते ही भाईके चरणों पर गिर कर भरत बोले, "तब यह राज्य किसी और ही को सौंप दें। मैं आपका सेवक हूँ, मेरी इतनी मजाल नहीं कि स्वामीके आसनपर बैठूँ।"

भरतको गोदमें ले रामचन्द्र बोले, "भाई भरत ! सुनो, चन्द्रमाकी शीतलता जाती रहे, हिमालय अपना अचल भाव छोड़ दे, सूर्य्य ठण्ढे हो जायँ, सागर अपनी मर्यादा छोड़ दे ; तौभी मैंने पिताके निकट जो प्रतिज्ञा की है उसे छोड़ नहीं सकता। तुम मेरी बात मान कर राज्य करो।"

जब भरतने देखा कि रामचन्द्र किसी तरह अयोध्या लौट चलनेको राज़ी नहीं होते तब कहा, "आर्य! जब आपकी ऐसी ही इच्छा है तब आप अपनी पादुकाएँ मुझे दे दें। मैं उन्हें गद्दीपर रख, स्वयं जटा बल्कल धारण कर, फल मूल आहार करता हुआ, चौदह वर्ष तक आपके आनेकी राह देखता हुआ नगरके बाहर अपने दिन बिताऊँगा। जिस दिन चौदह वर्ष पूरे हो जायँगे, उस दिन यदि आप नहीं आवेंगे तो मैं जलती आगमें कूद पड़ूँगा।" रामचन्द्रने "एवमस्तु" कह, उन्हें अपनी चरण-पादुका दे, आदरके साथ दोनों भाइयों और गुरु, माता तथा पुरवासियोंको विदा किया। भरत पादुका ले रामचन्द्रको प्रणाम कर, दुःखित चित्तसे अयोध्याको लौट गये।

माताओंको अयोध्यामें रख, भरतजी मन्त्री और सैन्यको ले नन्दीग्राममें आकर रहने लगे। वहीं पादुकाओंको छत्र चँवरसे भूषितकर, सिंहासनपर रख, उनकी पूजा करने लगे। चौदह वर्ष बीतने पर, जब रामचन्द्र बनसे लौटे तब भरतने उनको सिंहासन पर बैठाया। इन चौदह वर्षोंमें, एक दिनके लिये भी वे अयोध्यामें नहीं गये।

धन्य भरत! तुमसा भ्रातृ-भक्त कोई कहाँ होगा? तुम्हारे ही सदृश बन्धुओंने—

* "देशे देशे कलत्राणि, देशे देशे च बान्धवाः ।
तत्तु देशं न पश्यामि, यत्र भ्राता सहोदरः ॥"
इस वाक्यकी यथार्थता समझो थी ।

* सुत वित नारि भवन परिवारा ।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥
अस विचारि जिय जागहु ताता ।
मिले न जगत सहोदर भ्राता ॥

(गोस्वामी तुलसीदासजी)

विनय ।

श्रीकृष्ण भगवान् ।
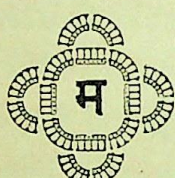
हाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें बुलाये जाकर सहस्रों ब्राह्मण, हितु, मित्र, राजा और जाति कुलके लोग हस्तिनापुरमें आये। सारे इन्द्रप्रस्थमें चहलपहलके मारे कान नहीं दिया जाता था। आये हुए लोगोंके ठहरनेके लिये कारीगरोंने पहले हीसे डेरे बना रखे थे। विविध प्रकारसे आनन्द पाकर, नाचगान देखते सुनते लोगोंने परम सुख लाभ किया।

युधिष्ठिरने सबसे विनय पूर्व्वक कहा कि आपलोग ऐसा करें जिसमें हमारा आरम्भ किया हुआ यह महान् कार्य्य निर्विघ्न समाप्त हो। उनकी प्रार्थनानुसार भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, दुर्योधन और दुःशासन सबने अपने अपने मनके मुताबिक़ काम बाँट लिये। दुःशासनको खिलाने पिलानेका काम दिया गया। अश्वत्थामा ब्राह्मणोंकी ख़ातिरदारीमें लगे। सञ्जय राजाओंकी सेवा स-

हायताके लिये नियुक्त हुए। सोने, चाँदी, हीरे, जवाहिरातकी रक्षाका भार कृपाचार्य्यने अपने ऊपर लिया। भीष्म और द्रोण सबके निरीक्षक और मन्त्री बनाये गये। दुर्य्योधनने राजाओंकी नज़रें लेने और श्रीकृष्ण भगवान्ने ब्राह्मणोंके पैर धोनेका काम अपने ऊपर लिया।

जो यदुवंशावतंश, पुरुषोत्तम, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ईश्वरके अवतार माने जाते हैं; बड़े बड़े ऋषि, मुनि, योगीश्वर जिनके पादपद्मके दर्शनोंके लिये उत्सुक रहते हैं; उन्होंने नौकरोंकी भाँति पैर धोनेका काम अपने ऊपर लिया। राजसूय यज्ञ के से भारी काममें सब किसीका मनोरञ्जन करना कभी सम्भव नहीं है और लोग यदि सन्तुष्ट न होंगे तो कार्य्य अधूरा ही रह जायगा; इसीसे भगवान् वासुदेवने सोचा कि यदि पहिले ही पैर धोकर वे विनय-वाक्यसे सबको सन्तुष्ट करेंगे तो किसी प्रकारकी त्रुटि होनेपर भी कोई कुछ बुरा न मानेगा। क्योंकि यह स्वयंसिद्ध बात है कि, दुनियाभरके आदमी विनयके आगे हार मान जाते हैं। किसीसे यदि कोई अपराध हो जाय और वह अपना अपराध स्वीकार न करे तो जिसका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है वह भी उससे चिढ़ने लगता है; लेकिन वही आदमी अगर विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगता

है कि मैं हाज़िर हूँ—क़ुसूर हो गया—माफ़ कीजिये—तब सब कोई उसकी वाहवाही करने लगते हैं। उसका अपराध सब लोग भूल जाते हैं। विशेषतः श्रीकृष्ण चन्द्रजीके समान महात्मा जिसके यज्ञमें पैर धोनेके लिये नियुक्त किये गये हैं उसको लोग बड़ा भारी आदमी समझेंगे इसमें सन्देह नहीं, यही सब सोच विचारकर संसारको विनयकी शिक्षा देनेके लिये ही भगवान्‌ने यह दासों का सा काम उठाया था। पर ऐसा करनेसे उनकी कुछ मानहानि नहीं हुई; बल्कि उनकी सबसे अधिक प्रतिष्ठा हुई।

यज्ञ आरम्भ होनेपर भीष्मने युधिष्ठिरसे कहा, "हे भारत! राजाओंका उचित सत्कार कीजिये। आचार्य, ऋत्विक्, सम्बन्धी, स्नातक, नृपति और प्रियव्यक्ति छः-ओंके लिये अर्घ्य लाइये। तत्पश्चात् जो सबसे श्रेष्ठ और समर्थ हों उनको पूजनीय अर्घ्य दीजिये। युधिष्ठिरने तब पूछा, "हे पितामह! आप प्रथम किसे श्रेष्ठ अर्घ्य देने योग्य समझते हैं?" भीष्म पितामह बोले—"हे पाण्डुनन्दन! जैसे ग्रहोंमें सूर्य्य बड़े हैं वैसे ही हमलोगोंमें श्रीकृष्णचन्द्र तेज, बल और पराक्रम सभी बातोंमें श्रेष्ठ हैं। जैसे अँधेरी रातमें चन्द्रमाके उदय होनेसे सबका मन प्रफुल्लित हो जाता है, जैसे कड़ी गर्मीमें विशुद्ध वायु चलनेसे प्राण मन आनन्दित

हो जाते हैं, वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्रजीके आ जानेसे हमारी यह सभा जगमगा रही है। अतएव यह श्रेष्ठ अर्घ्य उन्हींको प्रदान करना चाहिये।" यह सुन भीष्म पितामहकी आज्ञानुसार सहदेवने कृष्णचन्द्रको यथा-विधि अर्घ्य प्रदान किया। महात्मा वासुदेवने भी विधिपूर्वक अर्घ्य ग्रहण किया। कोई कवि ठीक ही कहता है—

नान्हक नन्हे हो रहो, जैसी नन्हीं दूब।
घास पात सब सूखिगे, दूब खूबकी खूब॥

क्षमा ।
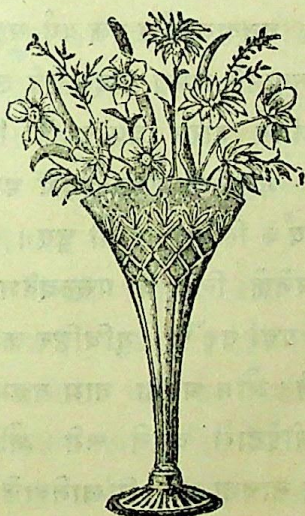
१ युधिष्ठिर ।

पाँचों पाण्डव इसो शर्त्तपर शकुनिके साथ जूआ खेलने को तैयार हुए थे कि, हार जानेसे वे लोग बारह वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करेंगे और इस अज्ञातवासके समय यदि कोई उनको पहचान लेगा तो उन्हें फिर बारह वर्षतकके लिये बनवास करना पड़ेगा। शकुनिके कपट-जूएमें हारकर, पाण्डव लोग बारह वर्षके लिये बनवासी हुए। तेरहवें वर्ष, अज्ञातवास करनेके लिये, वे प्रच्छन्नवेशमें मत्स्यदेशके राजा विराटके यहाँ पहुँचे। युधिष्ठिर कङ्क नाम धारण कर जुआरी बने। भीम अपना नाम वल्लभ प्रसिद्ध कर वहीं आकर रसोईदारी करने लगे। क्लीववेशी अर्जुन बृहन्नला नामके नाचना गाना सिखानेवाले बने। नकुलने अपना नाम ग्रन्थिक रख अपनेको पक्का घुड़सवार बतलाया और सहदेवने अपनेको तन्तिपाल नामक

गौओंका चरवाहा कहकर परिचय दिया। द्रौपदी सैरन्ध्री नामकी केश सम्हालनेवाली दासी होकर विराट्-राज-पत्नीके महलमें रहने लगी। धर्मराज युधिष्ठिर विराट्-राजके प्रधान मुसाहिबोंमें भर्त्ती हुए। धीरे धीरे भीम आदिने भी अपने अपने कामोंसे राजाको सन्तुष्ट किया। दुर्योधन वग़ैरः ने, हज़ार कोशिश करनेपर भी, उन लोगोंका कुछ पता नहीं पाया।

वहाँ रहते एक वर्ष बीतनेपर, दुर्योधनने विराट्-राजकी गौओंको चुरानेके लिये सैन्य भेजी। उस सैन्यके दो विभाग थे—एक भाग त्रिगर्तके राजा सुशर्मा और दूसरा भीष्म, द्रोण, कर्ण प्रभृति महारथियोंकी अध्यक्षतामें था। पहले सुशर्माने जाकर विराट्-राजकी हज़ारों गौएँ चुरा लीं। यह ख़बर पा, विराट्-राजने एक बड़ी भारी सेना उन लोगोंके विरुद्ध भेजी। पाण्डवगण भी सैनिकके वेशमें साथ साथ गये।

विराट्की सेनाने नगरके बाहर जाकर त्रिगर्त्त-वालोंपर आक्रमण किया। दोनों ओरसे घमासान लड़ाई होने लगी। कुछ देर लड़ाई होनेके बाद मत्स्यके राजाकी सेना हार गयी—विराट्-राज क़ैद हो गये—त्रिगर्त्तवाले उन्हें रथपर बैठाकर अपने नगरको ओर ले चले। पाण्डवगण अब तक अपने ज़ाहिर होनेके डरसे दिल खोलकर नहीं लड़े थे; किन्तु इस समय

विराट-राजकी ऐसी दशा देख युधिष्ठिरने महाबली भीमको बुलाकर कहा, 'वृकोदर! देखो, सुशर्म्मा मत्स्यराजको पकड़े लिये जाता है। इनके राज्यमें हम लोगोंने बड़े सुखके साथ अपने दिन बिताये हैं, इस समय वे हमी लोगोंकी आँखोंके सामने ही विपद्में पड़े हैं, अब चुप रहनेका समय नहीं है। अतएव उनको किसी सूरतसे बचाओ।" महापराक्रमी भीमने यह सुनतेही तुरत जाकर सुशर्मापर हमला किया। नकुल और सहदेवके साथ मिलकर, युधिष्ठिर विपक्षीसेनाओंका संहार करने लगे। इस प्रकार थोड़ीही देरमें उन लोगोंने सुशर्माको हरा दिया और गौओंको फिर ले लिया।

जिस समय मत्स्यराज गौ लानेके लिये सुशर्माके साथ लड़ाई करनेको चले गये; उसी समय अवसर ताक दुर्योधन, भीष्म, कर्ण इत्यादिने आकर विराट् नगरके अन्य भागपर आक्रमण किया और हज़ारों गौएँ ले लीं। गोपालकोंने रोते चिल्लाते विराट्के बेटे उत्तरको यह समाचार जा सुनाया। उत्तर उस समय रनवासमें थे। यह ख़बर पा, औरतोंके आगे अपनी शेख़ी बघारनेके लिये, वे कहने लगे, "पिता सारी सेना लेकर लड़ने चले गये। एक योग्य सारथि भी नहीं छोड़ गये। मैं सेना नहीं चाहता। यदि एक सारथि भी मिले तो अकेला

जाकर भीष्म, द्रोण आदिको हरा सकता हूँ किन्तु करूँ क्या? पिता एक साईस भी नहीं छोड़ गये, तब मैं कैसे कौरव-सेनाके साथ लड़ने जा सकता हूँ?" वृहन्नला रूपी अर्जुनने उनकी बात सुनकर उनका सारथि होना स्वीकार किया। तब उत्तर वृहन्नलाके साथ रण-क्षेत्रको चले। किन्तु युद्ध-क्षेत्रमें पहुँचते ही, सागरकीसी उमड़ी हुई कौरव-सेना देख, उनके होश उड़ गये। वे रथसे कूद कर भाग चले।

तब अर्जुनने सोचा, "मेरे रहते हुए यदि मेरे आश्रय-दाताकी गौएँ चोरी चली गयीं तो मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात होगी।" यह सोच तुरत रथसे उतर कर वे राजकुमार उत्तरके पीछे पीछे दौड़े। पास पहुँच कर, उन्होंने उत्तरका हाथ पकड़ लिया।

उनके हाथ पकड़नेपर कातर हो उत्तरने कहा, "वृहन्नले! मेरी बाँह छोड़ दो, तुम्हें मैं मुँह-माँगी चीज़ इनाम दूँगा; किन्तु इस समय मुझे यहाँ रोक मत रक्खो।" उत्तरका सारा शरीर इस समय दलदला रहा था।

उन्हें इस प्रकार डरा हुआ जान, अर्जुनने उनसे अपना परिचय कहा और उत्साह देते हुए कहा, "डरो मत। तुम्हें लड़ना नहीं पड़ेगा। तुम सारथि होकर रथपर बैठो। मैं लड़कर सब शत्रुओंको परा-

जित करूँगा।" तब अर्जुनको पहचानकर उत्तरके जी में जी आया। वे अर्जुनके सारथि बन उनका रथ हाँक ले चले। महावीर अर्जुनने थोड़ीही देरमें सबको परास्तकर गौएँ छुड़ा लीं।

इधर राजा विराट् भीमादि की सहायतासे सुशर्माको हराकर घर लौटे। यहाँ आनेपर सुना कि, उनका लड़का बृहन्नलाको लेकर कौरव-सेनाके साथ लड़नेके लिये अकेला ही रण-क्षेत्रमें गया है। सुनतेही घबराहटके मारे उनका खून सूखने लगा। उन्होंने अपने सैनिकोंको बुलाकर कहा, "हे वीरो! तुम लोग जल्द जाकर देखो, मेरा प्रिय पुत्र उत्तर जीता है कि नहीं। जिस कौरव-सेनाके आगे देव-सेना भी नहीं ठहर सकती उसीके साथ लड़नेके लिये मेरा प्रियपुत्र अकेला गया है, इससे मेरी तबियत घबरा रही है। वह बालक अवश्य ही उस अनन्त सेनाके द्वारा अबतक मारा जा चुका होगा।"

धर्मराज युधिष्ठिरने राजाको इस तरह दुःखित देख कहा, "हे महाराज! आप किसी बातकी चिन्ता न करें। जब बृहन्नला उनके साथ है, तब कोई हर्जकी बात नहीं है। वे निश्चय ही जीतकर लौटेंगे। उनका बाल भी बाँका नहीं होगा।" धर्मराजकी बात पूरी भी नहीं होने पायी थी कि, इसी समय दूतने आकर राजकुमारको

विजय-वार्त्ता कह सुनायी। तब युधिष्ठिर बोले, "महाराज! मैं कह चुका हूँ, वृहन्नला जिसका सारथि है उसका पराजय होना असम्भव है।" राजाने दूतको इनाम दे विदा किया और सड़कोंपर झण्डे पताकाएँ गढ़वाने, देवताओंकी पूजाकी तैयारी करने और विजयी राजकुमार उत्तरके स्वागत करनेके लिये मंत्री और योद्धाओंको आज्ञा देकर युधिष्ठिरसे कहा, "कङ्क! आओ, तब तक हम लोग जूआ खेलें।"

जूआ आरम्भ हुआ—खेलते खेलते मत्स्यराजने कहा, "आज हमारे लड़केने प्रचण्ड पराक्रमी कौरवोंको हराया है, इससे बढ़कर आनन्दकी बात और क्या हो सकती है?" युधिष्ठिरने विराट्-राजकी ऐसी बात सुन कहा, "वृहन्नलाके साथ रहनेपर कोई कभी हार नहीं सकता।"

उनका ऐसा कहना राजाको बड़ा बुरा लगा। वे क्रोधित हो बोले, "कङ्क! तुम मेरा अन्न खाते हो, मेरे पुत्रकी उचित एवं सत्य प्रशंसा न करके तुम बार बार उसी हीजड़ेकी तारीफ़ क्यों करते हो? तुम्हें अभी तक बोलनेका भी शऊर नहीं हुआ।" यह कह, मत्स्यराजने क्रोधमें आ उनके मुँहपर एक तमाचा कसकर लगाया। चट उनकी नाकसे खून बहने लगा। इसी समय द्वारपालने जाकर कहा कि वृहन्नला और राजकुमार दरवाज़ेपर आकर खड़े हैं। राजाने प्रसन्न

हो दरबानको उन्हें बुला लानेकी आज्ञा दी ; किन्तु धर्म-राज युधिष्ठिरने दरबानके कानमें धीरेसे कह दिया कि तुम केवल राजकुमार उत्तरको ही यहाँ पर बुला लाओ, वृहन्नलाको मत लाना, नहीं तो अभी अनर्थ हो जायगा।

अर्जुनने प्रतिज्ञा की थी कि युद्धके सिवाय और किसी समय जो कोई युधिष्ठिर महाराजके अङ्गमें चोट पहुँचावेगा उसे वे जीता कभी न छोड़ेंगे। इसीसे युधिष्ठिरने अर्जुनको वहाँ आने नहीं दिया। वहाँ आकर यदि अर्जुन अपने भाईकी नाकसे खून जारी होते देखते; तो किसी तरह विराट्-राजकी जान नहीं बच सकती थी।

उत्तर सभामें आ पहले अपने पिता और पीछे कङ्कको प्रणाम कर बैठ गया। उसने देखा युधिष्ठिर रुधिरसे तराबोर नीचा सिर किये हुए बैठे हुए हैं। सैरन्ध्री उनकी शुश्रुषा कर रही है। यह देख उत्तरने पूछा, "पिताजी! किसका सर्वनाश निकट आया है जिसने इनकी यह दशा की है? किसका काल सिरपर नाच रहा है? पिताजी!

विराट-राजने उत्तर दिया, "तुम्हारे लड़ाई जीतनेकी वार्त्ता सुन, प्रसन्न हो, मैं तुम्हारी बड़ाई कर रहा था; किन्तु यह कुटिल ब्राह्मण उसका अनुमोदन न कर केवल वृहन्नलाकी ही प्रशंसा कर रहा था। इसीसे मुझे क्रोध आ गया। मैंने ही रुष्ट होकर इस दुष्टको मारा है।

कानोंपर हाथ रख, डरके मारे सकपकाये हुए, उत्तरने

कहा,—"महाराज! आपने यह अच्छा नहीं किया। वास्तवमें ये सच्ची ही बात कह रहे थे। कौरवोंके साथ मैंने हरगिज़ युद्ध नहीं किया। इसका हाल आप पीछे जानेंगे; पहिले इन्हें प्रसन्न करनेका उपाय कीजिये; नहीं तो हमलोगोंका वंश अभी निर्मूल हुआ चाहता है।" महाराज विराट् अपने पुत्रकी बात सुन धर्मराज युधिष्ठिरसे क्षमा माँगने लगे। युधिष्ठिरने कहा, "महाराज! मुझे आप पर तनिक भी क्रोध नहीं है। मैं तो आपको कभीका क्षमा कर चुका हूँ। यह तो सब कोई जानते हैं, कि बलवान् कभी कभी अपने आश्रितोंपर रुष्ट हो जाया करते हैं; इसलिये आप पर मुझे तनिक भी रञ्ज नहीं है।"

विराट् ने पीछे जाना कि पाँचों पाण्डव ही वेश बदले हुए उनके यहाँ आये हुए हैं और क्लीव वेशधारी अर्जुनने ही कौरवी सेनाको हराया है। यह बात सुन, उन्होंने पाण्डवोंका बड़ा आदर सम्मान किया और उनकी प्रसन्नता लाभ करनेके लिये अर्जुनके बेटे अभिमन्यु के साथ अपनी बेटी उत्तराका व्याह कर दिया। धन्य धर्मराज! अगर ऐसी क्षमा, ऐसी धर्मप्राणता आपमें न होती; तो आर्य जाति आज तक तुम्हारी कीर्त्ति-कथा बड़े आदरके साथ काहेको गाती?

२ वशिष्ठ।
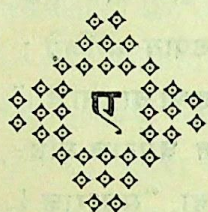
एक बार विश्वामित्र और वशिष्ठ इन दोनों तपस्वियोंमें बड़ी लड़ाई हुई। बात यह थी कि, बड़ी तपस्या कर चुकनेपर भी वशिष्ठ विश्वामित्रको ब्राह्मण नहीं कहते थे। उनका कहना यही था कि तुम क्षत्रिय हो, तपस्या करनेके कारण राजर्षि कहला सकते हो, ब्रह्मर्षि नहीं। अबके कई वर्षतक कठोर तपस्या करनेके बाद, विश्वामित्रने वशिष्ठसे कहा, "अबसे तुम्हें मुझको ब्रह्मर्षि कहना ही पड़ेगा; नहीं तो एक न एक दिन मैं तुम्हारी जान ले लूँगा।" इसी प्रकार वे बराबर उन्हें डराते धमकाते रहे, परन्तु वशिष्ठजीके आगे उनकी एक न चली—वे किसी प्रकार उन्हें ब्राह्मण कहनेपर राज़ी न हुए। विश्वामित्र वशिष्ठका यह अपमान सह नहीं सके। वे बदला लेनेको हर सूरतसे तैयार हो गये।

रात अँधेरी थी—घने और काले काले बादल घिर कर उस विकट अँधियारीको और भी भयावनी बना रहे थे। रात्रि एक भयङ्कर राक्षसीकासा आकार धारण किये हुए थी। इसी समय विश्वामित्र एक नङ्गी तल-

वार लिये हुए वशिष्ठकी कुटीकी ओर चले। उस भयङ्कर रजनीमें ऋषिके हाथकी वह चमचमाती हुई तलवार ऐसी जान पड़ती थी मानों किसी काली राक्षसीने अपना भीषण दाँत निकाला हो। रह रहकर आकाश-मार्गके एक कोनेसे लेकर दूसरे कोनेतक बिजली चमक उठती थी।

ऐसी विकट अँधियारीमें वशिष्ठजी अपनी कुटीमें अकेले बैठे हुए ध्यान कर रहे थे। सहसा, एक मनुष्य-मूर्त्ति उनकी कुटीके द्वारपर आ खड़ी हुई। वह मूर्त्ति तलवार लिये हुए विश्वामित्रकी थी। खटका पाकर, वशिष्ठकी समाधि भङ्ग हो गयी। उन्होंने झट आँखें खोलीं—देखा, सामने लाल लाल आँखें किये, हाथमें नङ्गी तलवार लिये हुए विश्वामित्र उनके दर-वाज़े पर खड़े हैं। क्रोधके मारे उनकी देह थर थर काँप रही है। यह देख वशिष्ठने पूछा, "अहा! राजर्षि विश्वामित्र! इतनी रात गये किधरसे आकर अनुग्रह किया? नङ्गी तलवार लिये चोरोंकी तरह हमारी कुटीमें क्यों घुस आये? भला, पूछ भी तो लिया होता। जान पड़ता है, हमारा सफ़ाया करके अपने रास्तेका कण्टक दूर करने चले हो।" इतना कह वशिष्ठजी धीरे धीरे मुस्करा दिये।

उनकी हँसी विश्वामित्रको चुभसी गयी। उन्होंने

गर्जकर कहा, "हाँ दुष्ट! मैं तुझे मारनेहीके लिये यहाँ आया हूँ। अब भी बोल, मुझे ब्राह्मण कहेगा कि नहीं? देखो, सावधान, अबके तुम्हारी रक्षा नहीं है। अभी यह मेरी तलवार तुम्हारा सिर धड़से अलग कर देगी।" यह कह, वे दाँत पीसते हुए उनकी ओर देखने लगे।

वशिष्ठजीका हृदय तोभी विचलित नहीं हुआ। वे प्रशान्त सागरकी भाँति गम्भीर भाव धारण किये रहे। वे पहले हीकी भाँति हँसते मुखसे बोले, "विश्वामित्र! सुनो भाई, ज़रा शान्त होकर मेरी बातोंपर कान दो। देखो, तुम ब्राह्मण बनना चाहते हो; परन्तु तुम यह नहीं जानते कि ब्राह्मणका स्वभाव दया और क्षमा करना ही है। तुममें इतनी धीरता और क्षमा तो है नहीं कि मुझे क्षमा कर देते; बल्कि उलटे मेरा सर काट लेनेके लिये आये हो; तब फिर तुम ब्राह्मण कहलानेका दावा क्योंकर कर सकते हो? यह तो क्षत्रियोंका ही धर्म है, कि तलवार लेकर अपने शत्रुका विनाश करते हैं; लेकिन ब्राह्मणको हर हाल-तमें क्षमा ही करनी उचित है। अतएव हे मुनि-राज! मैं तो तुम्हें कदापि ब्राह्मण कहनेका नहीं। हाँ, यदि तुममें ब्राह्मणकेसे गुण होंगे तो सारा संसार तुम्हें ब्राह्मण कहेगा, एक वशिष्ठके ही नहीं कहनेसे तु-

म्हारी उतनी क्षति नहीं होगी। मैं पहले हीसे अच्छी तरह जानता था कि तुममें ब्राह्मणोचित गुण नहीं हैं; इसीसे तुम्हें ब्राह्मण कहनेको राज़ी नहीं होता था, पर जिस दिन मैं देखूँगा कि तुममें ब्राह्मणकेसे गुण आ गये हैं उसी दिन मुझे तुम्हें ब्राह्मण कहनेमें तनिक भी आपत्ति नहीं होगी।" इतना कह वशिष्ठ जी चुप हो गये और हँसते हुए विश्वामित्रकी ओर टकटकी लगाये देखते रहे।

विनय और क्षमाके आगे सबको सिर नीचा करना पड़ता है। वशिष्ठजीकी ऐसी उदारताभरी क्षमायुक्त बातें सुन विश्वामित्रका क्रोध दूर हो गया। उन्हें अपने ऊपर आप ही घृणा उत्पन्न हुई। उन्होंने वह नङ्गी तलवार उठाकर दूर फेंक दी और कहा, "हे मुनिवर! आपके आगे मैंने हार मानी। आप वास्तवमें महर्षि हैं, मैं क्षुद्र जीव हूँ, आपकी बराबरी नहीं कर सकता। आप कृपाकर मेरे अपराध क्षमा करें।"

वशिष्ठने कहा, "मैं तो तुम्हें क्षमा कर चुका हूँ। मैं चाहता तो तुम्हारा अब तक बहुत कुछ अनिष्ट कर सकता था; परन्तु मैंने कभी वैसा भाव अपने जीमें नहीं आने दिया। ब्राह्मणका स्वभाव क्षमाशीलता है; अतएव तुम्हारे क्षमा माँगनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

वशिष्ठजीकी यह क्षमशीलता देख, विश्वामित्रके जीमें

उनपर बड़ी श्रद्धाभक्ति जन्मी। उनकी उदारताके आगे उन्होंने हार मानी और पश्चात्तापके मारे भीतर ही भीतर उनका हृदय दग्ध होने लगा। उस दिनसे, उन्होंने फिर कभी वशिष्ठके साथ झगड़ा फ़साद करनेका नाम भी नहीं लिया।

धन्य वशिष्ठजी! आपने प्रत्यक्ष ही दिखला दिया, कि क्षमाशीलता कितने महत्त्वकी वस्तु है। जो विश्वामित्र किसी प्रकार अपना हठ नहीं छोड़ते थे, वे आपकी इस क्षमाके आगे परास्त हो गये। यथार्थमें, आप ही ऐसे महत् जनोंकी सन्तान होनेके कारण, आज इस गिरी हुई दशामें भी ब्राह्मण-जातिकी पूजा होती है। वास्तवमें, आप ही लोगोंने इस वाक्यका अर्थ समझा था कि—

क्षमा तेजास्विनां तेजः, क्षमा ब्रह्मतपस्विनाम् ।
क्षमा सत्यँ सत्यवताँ, क्षमा यग्यः क्षमा शमः ॥

अर्थात्

क्षमा सकल गुनसों बड़ो, क्षमा पुण्यको मूल ।
क्षमा जासु हिरदै रहै, तासु दैव अनुकूल ॥

न्याय-निष्ठा।

राणा रायमल।

चाहे कितना ही दुःख क्लेश क्यों न सहना पड़े, पर जो न्यायी धीर अथवा गम्भीर हैं वे कभी उचित पथसे अपना पैर नहीं हटाते। प्रह्लादको उनके पिता ने हाथीसे कुचलवाया, आगमें तपाया, पहाड़से गिराया, सिंहकी माँदमें घुसाया; पर इन सब कष्टोंको भक्त प्रवर प्रह्लादने तिनकेके समान अपने सिरपर रख लिया। इसका फल यह हुआ कि, श्रीविष्णु भगवान् स्वयं खम्भ फाड़कर उनके लिये अवतीर्ण हुए। विश्वा-मित्रने हरिश्चन्द्रको कितना क्लेश, कितनी यातना पहुँचायी; पर क्या वे इससे अपने कर्त्तव्यसे तनिक भी डिगे? नहीं, प्रत्युत उन सब दुःखके पहाड़ोंको उन्होंने रूईकी तरह समझकर अपने कन्धेपर रख लिया और अपने कर्त्तव्यपर डटे रहे। इसी न्याया-नुसरणके प्रतापसे उनका मरा बेटा जी उठा था, इसी

न्याय-निष्ठाकी महिमासे श्मशान उनके लिये नन्दन-कानससे भी बढ़कर सुषमागार हो गया था, इसी न्याय-पद्धतिपर चलनेके कारण वे समूचे अयोध्यावासियोंके साथ अक्षय स्वर्गके अधिकारी हुए। कितने ही युगयुगान्तर बीत गये हैं, इस बीच कितनी ही भिन्न भिन्न जातियाँ भारत-सिंहासनकी अधिकारिणी हुईं, कितनी ही अघटनीय घटनाएँ घटीं, कितने ही प्राचीन नगर विस्मृतिके अतलतलमें निमग्न हो गये, और कितनी ही उजाड़ जगहोंमें बड़े बड़े नगर बस गये; पर अब भी न्याय, कर्त्तव्य और औचित्यके अनुगामियोंके नाम भारतके असंख्य नरनारियोंके हृदय-पटपर, अमिट अक्षरोंमें, लिखे हुए हैं। भारत-वासीका यह दृढ़ विश्वास है कि, जो न्यायकी ओर ध्यान देता है; प्रेम, भय और मित्रताके अनुरोधसे कभी पक्षपात नहीं करता; वह देवताके समान पूजनीय है। ऐसे ही एक देवतुल्य नरपतिने न्यायकी जैसी महिमा दिखलायी है उसकी कथा नीचे देते हैं :—

राव सुरतान चालुक्य वंशीय राजपूत थे। सदासे तक्षशिला (तोड़ातङ्क) नगर उनके अधिकारमें था। लेकिन कालक्रमवश एक अफ़ग़ानने उसे दख़ल कर लिया और वहाँसे उनको खदेड़ दिया। दुःखित हो, राव साहब अरवलीके पास बेदनौर नामक स्थानमें रहने लगे।

राव सुरतानके एक बड़ी सुन्दरी कन्या थी, उसका नाम था तारा। जब उन्हें बड़ी उदासी मालूम होती, तब उसी आनन्दमयी बालिकाको देख देख कर वे मनमें सुख शान्ति पाते थे। लड़कपनहीसे राव सुरतानने पुत्रकी भाँति उसको शिक्षा देनी शुरू की। रातको सोते समय, वे अपने पूर्वजोंकी वीरताकी कहानियाँ सुनाया करते। प्राचीन समयकी स्त्रियोंके युद्धमें बड़ी बड़ी वीरता दिखानेकी बात भी वे कहा करते थे। यही सब सुन सुन कर, उसने सङ्कल्प किया कि पिताका दुःख जैसा हो सके वैसे दूर करना ही चाहिये। उसी समयसे वह पुरुष का सा वेष रखने लगी। उसने घोड़ेपर चढ़ना और तीर चलाना सीखा। घोड़ेपर चढ़कर वह आसानी और फुरतीके साथ तलवार वा तीर चला सकतीथी। इसको साथ लेकर राव सुरतान कई बार तोड़ाका उद्धार करनेके लिये लड़े। उन लड़ाइयोंमें उन्हें जय तो नहीं हुई; परन्तु ताराकी रण-निपुणता देख सब लोग चौंक उठे। उसके आगे बहुतेरे चतुर लड़ाके भी अपना सिर नीचा कर देते थे। अनेक यवनोंने उसके हाथ प्राण भी खोये।

उस वीरा ताराकी अलौकिक सुन्दरताका चारों ओर बखान होने लगा। कितने ही राजपूत युवकोंने उसके साथ शादी करनी चाही; पर ताराके पिताने

एक अपूर्व प्रण किया था। वह यह था, कि जो राजपूत मुसल्मानोंके हाथसे तोड़ा जीत लेगा वही मेरी कन्याका पाणिग्रहण कर सकेगा। मेवाड़के राणा रायमल्लके तीसरे लड़के जयमलने ताराके साथ विवाह करना चाहा; पर उसने रावसाहिबके प्रणका कुछ भी ध्यान न कर धोखेबाज़ीसे उसे लेना चाहा। उसकी यह चेष्टा सफल नहीं हुई और उसके इस बर्त्तावसे रञ्ज होकर रावने उसको जानसे मार डाला।

राणाके तीन लड़कोंमेंसे जेठे संग्रामसिंहका पता नहीं था, मँझले पृथ्वीराजको खुद उन्होंने देश-निकाला दे दिया था। इस समय केवल छोटे जयमल ही उनके जीवनके एकमात्र अवलम्बन थे। इनको भी राव ने कत्ल ही कर डाला। यह सुनकर राणाको कितना कष्ट होगा और वे राव साहबपर कितना रञ्ज होंगे, यह सोच सब लोग व्याकुल हो रहे। हालाहाली, उनको इसकी ख़बर देनेकी किसीको हिम्मत नहीं होती थी। पर जब यह समाचार राणाके कानोंमें पड़ा, तब वे क्रोधित होनेके बदले प्रसन्न हो बोले, "जो कुलाङ्गार विपद्में पड़े हुए एक सम्भ्रान्त राजपूतकी बेइज्ज़ती करनेको उतारू हुआ था, उसको ऐसी ही सज़ा मिलनी चाहिये थी। राव सुरतानने कुछ अन्याय नहीं किया है। मैं उनपर बहुत ही प्रसन्न हूँ।" यह

कह, राणाने इनामके तौरपर बेदनौरका ज़िला राव साहबके नाम लिख दिया। इस उदारता और न्यायपरताका भी कुछ ठिकाना है! भारतको छोड़, पृथिवीके किसी देशमें ऐसी न्याय-मूर्त्ति पैदा नहीं हुई!! अपने प्राण दे डालना सहज है, पर पुत्रकी मृत्यु से प्रसन्न होना यह राणा रायमलका ही काम था। धन्य राणाजी! इस न्याय-निष्ठाके लिये आपका नाम इतिहासमें, उज्ज्वल अक्षरोंमें लिखा हुआ, सदा शोभा पाता रहेगा। आप ही जैसे न्याय-निष्ठ व्यक्तियोंके लिये महाराज भर्तृहरिने लिखा है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात्—चाहे नीतिज्ञ लोग निन्दा करें चाहे प्रशंसा, लक्ष्मी आवें चाहे जहाँ तहाँ चली जायँ, चाहे आज ही मृत्यु हो चाहे युगान्तरमें, लेकिन जो न्यायी और धीर गम्भीर पुरुष हैं वे कभी न्यायकी राहसे पैर नहीं हटाते।

आरुणिक ।

पूर्व कालमें, अयोध धौम्य नामके एक ऋषि रहते थे। उनके बहुतसे शिष्य थे। उनमेंसे एकका नाम आरुणिक था। एक दिनकी बात है कि गुरुजीने आरुणिकको बुलाकर कहा कि जाकर खेतमें बाँध बाँध आओ। गुरुकी आज्ञा पा वह खेतमें गया और बाँध बाँधनेका यत्न करने लगा; पर पानीकी धारा ऐसी तीव्र थी कि मेंड़ बाँधना मुश्किल हो रहा था। जब आरुणिकने देखा कि बाँध नहीं बँधता है और ऐसी हालतमें गुरुजीकी बड़ी हानि होती है तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। जब सब जगहसे बाँध बाँध आया तो उसने देखा, कि एक ओरसे पानी बहता ही है। तब लाचार होकर वह पानी जिधरसे निकलता था वहाँ ही जाकर लेट रहा। सारे दिन बिना खाये पिये, वह जहाँका तहाँ पड़ा रहा।

साँझ हो गयी और वह घर नहीं आया, तब तो

गुरुजीको बड़ी चिन्ता हुई और वे अपने चेलोंको साथ लेकर खेतकी ओर चल पड़े, वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने चारों ओर दृष्टि फेरी लेकिन वह नज़र नहीं आया ; तब उन्होंने बड़े ज़ोरसे उसका नाम पुकारा। धौम्य ऋषिकी आवाज़ पहचानकर उसने कहा, "खेतका पानी रोकनेके मैंने बहुत यत्न किये लेकिन तब भी पानी निकलता ही रहा ; इसलिये पानीके निकासपर मैं खुद ही सोया हुआ हूँ। अगर उठूँगा तो फिर पानीकी धारा बह चलेगी।" धौम्य ऋषि और उनके शिष्य आरुणिकके इस अलौकिक कार्य्य और आदर्श गुरु-भक्तिको देख आश्चर्य्यसे चकित हो रहे। सबके मुँहसे धन्य धन्यकी ध्वनि निकल पड़ी। धौम्य ऋषिकी आज्ञा पाकर वह वहाँसे उठा और उनके पीछे पीछे उनके आश्रममें गया। यही आरुणिक अन्तमें, गुरुकी कृपासे, सर्व शास्त्रोंमें पारङ्गत हो आश्रमसे निकले और उद्दालक ऋषिकी उपाधि पायी। इन उद्दालक ऋषिने अपने जीवन-कालमें बड़ा यश कमाया और संसारमें बड़े विख्यात हुए।

पाठक ! देखा, आपने ? जिस समय भारतमें ऐसे ऐसे गुरु-भक्त पैदा होते थे ; उसी समय इसने गौतम, कणाद, कपिल व्यास जैसे पृथ्वीके सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों और पण्डितोंको जन्म दिया था। आज उसी गुरु-

भक्तिके अभावसे यहाँके विद्यार्थी अकिञ्चित्कर, उद्धत और कर्त्तव्य-ज्ञान-हीन होते हैं। जो गुरु ज्ञान देकर हमें पशुसे मनुष्य बनाते हैं उनकी श्रद्धा करना हमारा नितान्त आवश्यकीय और पालनीय धर्म है। जब तक ऐसा नहीं करेंगे, तबतक इस संसारमें हम किसी भी कार्य्यमें सफलीभूत नहीं हो सकेंगे। कविने क्या ही यथार्थ बात कही है—

मन अँधियारी कोठरी, गुरु उजियारी कीन
गुरुदेव होते नहीं, तो रहते बुद्धिविहीन.
एकहिं अक्षर शिष्यको, जो गुरु देत बताय
पृथ्वीपर सो द्रव्य नहीं, देकर ऋण उतराय.
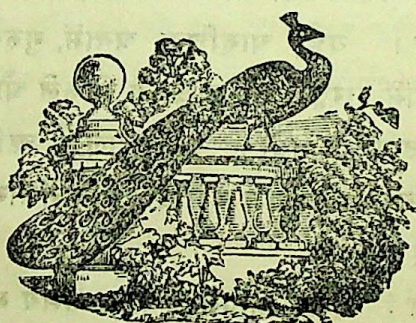
राज-भक्ति।

१ प्रतापके पुरोहित।

एक बार मेवाड़ाधिपति महावीर महाराणा प्रतापसिंह और उनके छोटे भाई सकतसिंहमें लड़ाई हुई। लड़ाईका कारण एक शिकार था। दोनों भाई शिकार खेल रहे थे। उन लोगोंने एक ही समय तीर छोड़ा; पर किसके अस्त्रसे शिकार मरा इसको कोई ठीक नहीं जान सका। प्रताप कहते 'मैंने ठीक निशाना किया था, मेरे ही तीरसे वह गिरा है, और सकतसिंह कहते 'मैंने मारा है।' किसी तरह झगड़ा मिटा नहीं। तब क्रोधसे उत्तेजित हो तलवार हाथमें ले, प्रतापने कहा, "अच्छा, अगर तुम्हारे तीरसे मरा है तो आओ मेरी तलवारके वारको रोको। देखें, हमारा निशाना बेचूक होता है या तुम्हारा।" अच्छा, तो देखिये कहकर, सकतसिंह भी बर्छा ले उनके सामने डट गये। प्रतापने भी अपना बर्छा ताना। दोनों

ओरसे शस्त्र चलने लगे। वीरोंकी प्रथाके अनुसार सकतसिंहने प्रतापकी पद-धूलि अपने सिरपर चढ़ायी और उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया। इसके बाद, एक दूसरेपर निर्भय होकर हथियार बरसाने लगे। दर्शकोंके जीमें, मेवाड़का सर्वनाश आया देख, बड़ा क्षोभ हुआ; पर किसीको ऐसा साहस नहीं हुआ कि उन्हें रोके। राज-कुलके परम हितैषी पुरोहित थोड़ी ही दूर पर खड़े थे। उन्होंने दोनों राजकुमारोंको लड़ते देखकर कहा, "महाराज! यह क्या करते हैं? जाने दीजिये, जाने दीजिये।" बस, यह कहते ही कहते, वे दोनों भाईयोंके बीचमें आखड़े हुए और लड़ाई बन्द करनेके लिये बार बार अनुरोध किया, पर उनकी सभी चेष्टाएँ विफल हुईं।

उन्होंने मन ही मन सोचा, 'मेवाड़की राजधानी मुग़लोंकी हो रही है। सभी हिन्दू राजे मुग़लोंके दास हो रहे हैं। इस समय एक मात्र प्रताप ही सारी हिन्दूजाति और राजपूतवंशके आशा भरोसा हैं। कहाँ तो ये दोनों भाई मिलकर पापी यवनोंके हाथसे देशका उद्धार करते थे; कहाँ ये लोग आपसमें ही लड़कर मर मिटनेको तैयार हो रहे हैं। इसलिये जैसे हो वैसे इनका हाथ रोक देना ही चाहिये।' ऐसा विचारकर, उन्होंने लाचार हो एक छुरी निकाल अपने पेटमें भोंक दी

और उन दो लड़ते वीरोंके सामने ही पटसे उनकी रक्त-रञ्जित देह गिर पड़ी। पुरोहितकी ऐसी अवस्था देख, दोनों भाइयोंकी आँखें खुलीं। उन्हें ठीक बोध हुआ कि उन्हींके कर्म-दोषसे यह रोएँ खड़े कर देनेवाली भयङ्कर घटना घटी है। यह विचार जीमें पैदा होते ही उनका कलेजा दहल गया! उन्होंने उसी दम लड़ाईसे मुँह मोड़ा। दोनोंके हथियार छूट गये। क्रोधमें आकर प्रतापने उसी दम सकतको मेवाड़-राज्यसे बाहर निकल जानेको कहा। बदला लेनेका भय दिखलाकर, शेर-दिल सकतसिंहने उसी दम मेवाड़ छोड़ दिया और प्रतापके कट्टर शत्रु, अकबर और मानसिंहका साथ दिया। प्रतापने यथाविधि अपने पुरोहितकी अन्तिम क्रियाएँ करायीं और उनके बालबच्चोंके लिये, सदाके वास्ते, थोड़ीसी भूमि निकाल दी। आज भी उनके वंशधर उस वृत्तिको भोग करते हैं। उस हितकारी पुरोहितने जिस जगह, अपने राजाके उपकारके लिये, अपने प्राण दिये थे वहाँ एक स्मारक-स्तम्भ खड़ा कर दिया गया। आज तक वह कीर्त्ति-स्तम्भ, उन द्विजश्रेष्ठके पवित्र रक्तसे रँगी हुई भूमिपर खड़ा रहकर, उनके अद्भुत आत्म-त्याग और गाढ़ी राज-भक्तिका परिचय देता है।

---

२ झालापति मन्ना ।
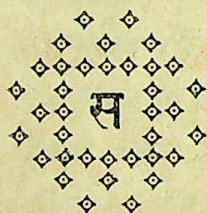
सन् १५७६ ई० के सावनकी सातवीं तारीख़का प्रसिद्ध हलदीघाटीकी लड़ाई हुई थी। उसमें मेवाड़के प्रसिद्ध वीर प्रतापसिंहने सिर्फ़ बाईस हज़ार सेना लेकर सम्राट अकबरकी तीन लाखसे ऊपर सेनाका सामना किया था। वैसी लड़ाई फिर भारतमें नहीं हुई।

जब प्रतापने देखा कि चारों ओरसे मुग़ल सैनिक उन्होंकी ओर लक्ष्य किये हुए हैं तब वे बड़े जोशके साथ शत्रु-सेनामें घुसनेकी चेष्टा करने लगे। उन्होंने बड़ी फुर्ती और चालाकीसे अपनेही हाथों अनेक वीर मुसल्मानोंको मारा और थोड़ी ही देरमें सारी मुसल्मानी फ़ौज़ तित्तरवित्तर हो गयी। तब वे मानसिंहका मान भङ्ग करनेके लिये उन्हींको खोजने लगे, पर मानका कहीं पता ठिकाना नहीं लगा। कहीं उन्हें न देख, वे अकबरके बेटे सलीमको मारनेके लिये दौड़े पर उनका हाथी एक तलवारकी भरपूर चोट खाकर इतनी तेज़ीसे युद्ध-क्षेत्रसे भाग चला कि वे फिर कोई वार नहीं कर सके। सलीमकी देहपर चोट नहीं आयी। हाथीके पीछे पीछे प्रतापने भी अपने प्यारे

चेतक घोड़ेको चलाया। उस समय दोनों ओरकी सेनाओंमें घोर घमासान मच रहा था। मुसल्मानोंकी लोथों पर लोथें गिर रही थीं। नये नये सिपाही आकर उनके स्थान भरते और नये उत्साहसे लड़ने लगते थे। क्रमश: प्रतापका दल हारने लगा। लेकिन प्रतापने इस ओर ध्यान नहीं दिया। वह राजपूतकुलके कलङ्क मानसिंहको ढूँढ़ निकालनेमें ही लगे थे। उनके मस्तकपर बहुमूल्य राजमुकुट सोह रहा था। उसी ऊँचे मुकुटकी ओर लक्ष्य कर बहुतसे मुसल्मान चारों ओरसे प्रतापपर टूट पड़े और दनादन वार करने लगे। इस प्रकार वे तीन बार शत्रुओंके निशाने बने; लेकिन तीनों ही बार उनके प्राण बच गये। पर अबके उनपर भारी विपद आयी। वे अकेले मुसल्मानोंके घेरेमें पड़ गये। पासमें कोई भी नहीं था। जिधर दृष्टि डालते ख़ाली दुश्मन ही नज़र आते थे। तौभी प्रताप दृढ़ थे। वे उसी जोश और दिलेरीके साथ हथियार चला रहे थे जैसे कि पहले। उनके शरीरपर अनगिनित घाव लग गये, पर इसकी उन्हें कुछ पर्वाह नहीं।

वीरवर झालापति मन्ना, दूरहीसे प्रतापकी ऐसी भयङ्कर अवस्था देख दौड़कर उनके निकट जा पहुँचे और पलक मारते ही उनके सिरसे मुकुट उतार अपने सिर पर धर लिया और घोड़ेको चाबुक मार सरसे

वहाँसे निकल चले। मुसल्मानोंको एक मुकुटही प्रतापकी पहचान थी। सो मुकुटधारी मन्नाको राणा समझकर, प्रतापको छोड़, वे सबके सब उधर ही को लपके। पास पहुँचनेपर मन्नाके सैनिकों और मुसल्मानोंसे बड़ी घनघोर लड़ाई हुई; पर असंख्य मुसल्मानोंके आगे दालमें नमककीसी थोड़ी मन्नाकी सेना क्या कर सकती थी? अन्तमें सारे दलबलके साथ मन्नाने अपने अन्नदाता राजाके लिये प्राण दे वीर-गति पायी। सब लोग जान गये कि प्रताप मारे गये; पर उनके अपने लोग इस मिथ्या जनरवसे नहीं डरे।

इस अपूर्व आत्मोत्सर्गके बादसे, उनके वंशधर लोगोंने बराबर वही पोशाक पहननेकी अनुमति पायी जैसी राजसी पोशाक मन्नाकी मृत्यु समयमें थी। आज भी उनके कुल-धर वे सब राजचिन्ह और राजाकी उपाधिसे विभूषित होकर राणाकुलकी दाहिनी ओर बैठते हैं। ऐसा सम्मान और किसीका नहीं है। वास्तवमें, राज-भक्ति प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है और यह प्रत्यक्ष सुखको देनेवाली है। हमारे शास्त्रोंमें ठीक ही कहा है—

'महती देवताह्येषा नररूपेण तिष्ठति।'

राजा बड़ा भारी देवता है और मनुष्योंके कल्याण होके लिये मानवाकारसें संसारमें अवतार लेता है।

अतिथि-सत्कार।

१ मुद्‌गल।

कुरुक्षेत्रमें एक सत्यवादी, जितेन्द्रिय, और महात्मा ऋषि रहते थे। उनका नाम मुद्गल था। वे उञ्छवृत्ति* अवलम्बन करके अपनी जीविका निर्वाह करते थे। पर अतिथि-सत्कारमें इनका मन बहुत लगता था। सब जगह इनके इस गुणकी धूम सी मच गयी थी।

महर्षि दुर्वासाके भी कानोंमें उनकी यह प्रशंसा पहुँची। उन्होंने सोचा, मुनिकी परीक्षा लेनी चाहिये। ऐसा दृढ़ निश्चय कर, वे मुद्गल ऋषिके आश्रमकी तरफ़ चल पड़े।

पन्द्रह दिनपर मुद्गल महर्षिने आज भोजनादि

---

* इस वृत्तिवाले पुराने ज़मानेमें बहुत होते थे। १५ दिनतक ये खेतोंमें अन्न चुनते, बाद उसको पकाते और अतिथि-सेवा कर उसीमेंसे खाते थे।

बनाया है। ज्योंही खानेको बैठा चाहते हैं त्योंही दुर्वासा ऋषिने आकर कहा, "हे द्विजोत्तम! मुझे बड़ी भूख लगी है। आपके पास यदि अन्न हो, तो खिलाकर मेरी जठर-ज्वाला बुझाइये।" महर्षि मुद्गलने बड़ी भक्तिके साथ भूखे दुर्वासाको पाद्य, अर्घ और उत्तम भोजन दिया। क्षुधित दुर्वासा ऋषि बड़े आनन्दके साथ उस दिनका सब भोजन खागये; पर इससे मुद्गलके जीमें कुछ भी खेद नहीं हुआ। दूसरे पक्षमें भी, इसी प्रकार वहाँ आकर मुद्गलकी सारी खाद्य-सामग्री चट कर गये; फिर भी वे बिचारे अपने स्त्री पुत्रके साथ उपास रह गये। किन्तु क्षुधा और क्रोध सबको दबा कर, वे पुनः उञ्छवृत्ति अवलम्बन करते हुए भगवान्का नाम लेने लगे। वे बार बार अन्न इकट्ठा करते और दुर्वासाजी आकर अपना हाथ साफ़ कर जाते। इस तरह छः बार दुर्वासाने उन लोगोंको सोलहों दण्ड एकादशी करायी; लेकिन तो भी जब मुद्गल ऋषिके जीमें कुछ दुःख नहीं हुआ, तब वे प्रसन्न हो कर बोले, "हे महात्मा मुद्गल! इस संसारमें आपके समान निस्पृह दाता मैंने नहीं देखा। पापी पेटके आगे मनुष्य धर्मकर्म सब कुछ भूल जाता है—मन बड़ा चञ्चल है, उसे रोकना बड़ी टेढ़ी खीर है। इस कारण अपनी पसीनेकी कमाई छोड़ते बड़ा दुःख

होता है; पर इन सब वाधाओंके होते हुए भी आपने बार बार अपने मुँहका आहार छोड़ कर अतिथि-सेवा की है; अतएव आप धन्य हैं। इस जगत्‌में जब तक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे तब तक हे ऋषिश्रेष्ठ! आपका नाम मिटनेवाला नहीं।"

२ पृथ्वीराज और सूरजमल।

(रा)णा रायमलके भाई सूरजमल ने जब देखा कि राणाका बड़ा बेटा संग्रामसिंह लापता ही हो गया, मँझला पृथ्वीराज देशसे निकाल ही दिया गया और छोटा जयमल तारा के पीछे मारा ही गया; तब तो वे इसी आनन्दमें फूल गये कि अब वे ज़रूर ही राजा होंगे। लेकिन जयमलके मारे जानेपर जब पृथ्वीराजको राणाने बुला लिया, तबसे उनकी सारी आशाओंका अन्त हो गया। सूरजमल मालवाके हाकिम मुज़फ्फ़र और सारङ्गदेव नामके एक राजपूतको साथ ले राणाके विरुद्ध उठ खड़े हुए। कई एक देशोंको जीतनेके बाद, वे चित्तौरपर चढ़ाई करनेकी चेष्टा करने लगे। सूरजमलकी ऐसी पाप-चेष्टा देख राणा थोड़ीसी सेना लेकर उनके साथ लड़ने लगे। लड़ाईमें राणाकी देह लहूसे तर-बतर हो गयी। निदान उनको मूर्च्छा आ गयी। इसी समय पृथ्वीराज अपने पिताको समरभूमिसे हटाकर सूरजमलके साथ लड़ने लगे। खूब लड़ाई हुई। सूरजमलको सारी देहमें घाव हो गये तोभी वे लड़नेसे हटे नहीं। उस दिन हार जीतका कुछ निर्णय

नहीं हुआ। सूर्यास्त होनेपर लड़ाई बन्द हो गयी और दोनों दलके लोग अपने अपने डेरेमें चले गये।

अपने डेरेमें लौट कर थोड़ी देर आराम करनेबाद, पृथ्वीराज अपने चाचा सूरजमलके पास गये और देखा कि वह एक मामूली खाटपर सोये हुए हैं, उनकी देह खूनसे तर हो रही है। एक जर्राह बैठा उनके घावोंकी मरहम पट्टीकर रहा है। जो भतीजा उनका जानी दुश्मन है, जिसके द्वारा उनकी यह दुर्गति हुई है, जिसे मार गिरानेके लिये उन्होंने बारम्बार चेष्टा की थी, आज उसीको सामने आया देखकर वे सेजसे उठ खड़े हुए और बड़े आदरसे अपने भतीजेको बैठाया। दोनोंके आकार प्रकार और भावभङ्गीसे मालूम होता था, मानों इनमें कभी भी कुछ लड़ाई नहीं है, मानों सूरजमलके शरीरमें कोई पीड़ा नहीं है। खाटसे उठते वेर उनके घावोंसे फिर खून बहने लगा था, उसे देख पृथ्वीराजके जी में गहरी चोट बैठी। परन्तु सूरजमलके मुँहपर ज़रा चिन्ताकी छाया तक न दीख पड़ी।

बैठ चुकनेपर पृथ्वीराज बोले, "काका! आपके घाव इस समय कैसे हैं?" हँसते-मुखसे सूरजमलने जवाब दिया, "बेटा! तुमको देख मेरी सब पीड़ा दूर हो गयी।" पृथ्वीराजने कहा, "चाचाजी! मैं देवादि-

देव एकलिङ्गजीके दर्शनोंके निमित्त जा रहा था। राहमें आपको देखनेकी बड़ी इच्छा हुई; इसीसे चला आया। इस समय मुझे बड़ी भूख मालूम होती है, कुछ हो तो खिलाइये।"

सूरजमल बड़े आनन्दित हुए और तुरत अपने भतीजेके खानेपीनेका इन्तज़ाम कर दिया। दोनोंने एकही थालीमें भोजन किया। चलती बेर पृथ्वीराजको उन्होंने पानके बीड़ा दिया उसे भी वे बिना किसी प्रकारका सन्देह किये खा गये। बहुधा शत्रुलोग अपने प्रतिद्वन्द्वीको पानमें ज़हर देकर मार डालते हैं; पर पृथ्वी राजके मनमें इसका ज़रा भी सन्देह नहीं हुआ; क्योंकि वे निश्चिन्त थे कि क्षत्रिय वीर कभी अपने घरपर आये हुए अतिथिके साथ ऐसी विश्वास-घातकता नहीं करते।

चलते समय पृथ्वीराजने कहा, "काका! हमी दोनों लड़कर हार-जीतका फैसला करेंगे। व्यर्थमें अनगिनित सिपाहियोंके सर कटानेकी कोई ज़रूरत नहीं है।" सूरजमलने कहा, "बहुत खूब! तुम्हारी राय बहुत पक्की है।"

दूसरे दिन लड़ाईमें सूरजमल हार गये। पृथ्वीराज के गले जयलक्ष्मीने माला डाली। कल घर पर आनेपर जिस भतीजेकी उन्होंने पूरी पूरी अभ्यर्थना की थी, उसे ही आज जयी देखकर वे क्रुद्धसे गये। लेकिन कल

उसीको मिहमानदारी करनेमें अपनेको धन्य माना था। कहाँ! उदारता, उच्चहृदयता और आतिथेयताका ऐसा सच्चा उदाहरण ऐसा प्रकृत प्रतिविम्ब, जगत् ढूँढ़ आइये तौभी कहीं नहीं पाइयेगा। ऐसा अतिथि-सत्कार हिन्दू ही कर सकता है; उसकी नीति है—

"अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुः पार्श्वगताच्छायां नोपसंहरतिद्रुमः॥

अर्थात्—

अरिहु सदन अतिथि बन आवै
ताहि पूजि आहार करावै।
खल बढ़ई वरु काट गिरावै
पै तरुवर नहीं छाँह हटावै॥

और भी कहा है—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो, गृहात्प्रातिनिवर्त्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा, पुण्यमादायगच्छति॥

जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है वह उसे अपना पाप दे उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

सत्यपालन।

हरिश्चन्द्र।
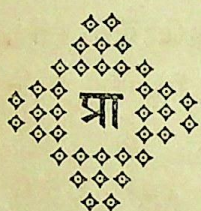
चीन समयमें अयोध्याके सूर्यवंशी-राजाओंका इस ससागरा पृथ्वीपर एक चक्रवर्त्ती राज फैला हुआ था। उसी सूर्यवंशमें दशरथ-नन्दन, भक्तउरचन्दन, आनन्दकन्द, श्रीरामचन्द्रजीका जन्म हुआ था। जिन्होंने इस अवनीतलपर जन्मग्रहण कर, बड़े बड़े राक्षसोंके अत्याचारसे पीड़ित, वसुन्धराका भार उतारा था। कौन ऐसा हिन्दू होगा जिसके हृदयमें उन जानकी-जीवनका पुण्यनाम अमिट अक्षरोंमें अङ्कित नहीं होगा? आज तक बड़े बड़े पुरातत्वान्वेषी विद्वान्गण इस बातका पता नहीं लगा सके हैं और न इसका पता पानेकी कोई सम्भावना ही है कि पुण्यश्लोक भगवान् वाल्मीकिकी लेखनी जिस पुण्य-कथाको लिखकर पवित्र हुई है, जिस चिरस्मरणीय इतिहासकी एक एक बात आज भी भक्त हिन्दूके अन्तःकरणको पुण्य-भावनासे भर देती है

उस घटनाको हुए कितने सहस्र वा लक्षाधिक वर्ष व्यतीत हुए हैं, यह बात अतीतकी दुष्प्रवेश्य उदर-दरीमें जा छिपी है जिसको खोज निकालना मानवी शक्तिके बाहर बात है। अस्तु; पुराणोंमें कथा आयी है कि राजा हरिश्चन्द्र भगवान् रामचन्द्रसे पैंतीस पीढ़ी पहले हुए थे। आजतक इस भूमण्डलमें उनके समान सत्य-वादी न पैदा हुआ और न होगा। अपने प्यारे पाठ-कोंके लाभार्थ हम नीचे उन्हीं प्रातःस्मरणीय राज-र्षिके अद्भुत सत्यपालनकी कथा लिपिबद्ध करते हैं :—

एक समय की बात है कि राजा हरिश्चन्द्र रातको अपने शयनागारमें सोये थे। स्वप्नमें उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानों कोई ब्राह्मण, जिसे देखते ही हृदयमें श्रद्धा उपजती थी, उनके सामने आया और उसने उनसे उन-का सारा राज्य माँग लिया। उन्होंने उसी दम अपना सर्वस्व 'ब्राह्मणाय नमः' कर दिया। भोरको जब उनकी नींद खुली तब उन्हें स्वप्नकी सारी बातें याद आने लगीं। उन्होंने सोचा, जब मैंने यह राज्य विप्र-वर्यको दे ही दिया तब फिर इस पर मेरा क्या अधिकार रहा? अब मैं सिंहासन पर नहीं बैठूँगा और आजसे राजा कहलाना भी छोड़ दूँगा; लेकिन जब तक वे स्वप्नमें दर्शन देनेवाले ब्राह्मणदेवता आकर राज्यकी बागडोर

अपने हाथमें नहीं ले लेते तब तक मैं उनका प्रतिनिधि बनकर सारे राज्य-कार्य चलाऊँगा।"

अपने जीमें ऐसा सङ्कल्प कर,उन्होंने उसीदम समस्त राज्यमें ऐसी डौंड़ी पिटवा दी कि 'आजसे कोई हरिश्चन्द्रको राजा नहीं समझे।' जिसदिन सारे राज्यमें ढिंढोरा फिर गया, उसी दिन विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्रके पास आ पहुँचे और बोले,—"हे दानवीर! मैंही आपका वह दानपात्र हूँ जिसे आपने स्वप्नमें राज्य अर्पण किया था। अतएव अब आप इस राज्यसे अपना सम्बन्ध छुड़ालें और मुझे इसपर अधिकार कर लेने दें।"हरिश्चन्द्रने विनय पूर्वक सिर झुकाकर ऋषिकी वह आज्ञा स्वीकार की और अपने स्त्रीपुत्रादिसे भी अपने इस अलौकिक दानका ब्यौरा कह सुनाया। जो सुनता वही आश्चर्यके समुद्रमें ग़ोते लगाने लगता और हर्ष-गद्गदचित्तसे हरिश्चन्द्रको हज़ारों धन्यवाद देने लगता कि धन्य राजा हरिश्चन्द्र! जिन्होंने स्वप्नमें किये हुए दानके अनुसार एक यः कश्चित् ब्राह्मणको सारा राजपाट सौंप दिया।

रानी राजाके मुखसे वह अप्रिय सम्वाद सुनकर कुछ देरतक उदास मुँह किये रही। बादको जब अति श्रेष्ठ राजाने उन्हें सत्यका महत्व, प्रतिज्ञापालनकी श्रेष्ठता और धर्मका सूक्ष्म तत्व भली भाँति समझाया

तब उन्हें धैर्य हुआ और वे हर प्रकारसे अपने पूज्य पतिदेवका अनुसरण करनेको तैयार हो गयीं। इसके अनन्तर राजा महलोंके बाहर आये। तब विश्वामित्रने कहा कि 'हे राजन्! इस इतने बड़े दानकी कुछ दक्षिणा भी तो होनी चाहिये।' यह सुन उन्होंने पहलेतो कोषाध्यक्षसे कुछ सोना लाकर ऋषिको देनेके लिये कहा; लेकिन फिर जब उन्हें याद आया कि अब इस राज्यपर तो उनका कोई स्वत्व नहीं रहा तब उन्होंने प्रतिज्ञाकी कि "हे द्विजदेव! आजसे एक मास पश्चात् आकर मुझसे मिलें तो मैं अवश्यही आपको दक्षिणा स्वरूप ढाई भार सुवर्ण आपके अर्पण करूँगा।" यह सुन विश्वामित्र तो राज्यके संभारमें लगे और राजा हरिश्चन्द्र मलिनवेश किये अपने स्त्री पुत्रके साथ प्रासादसे बाहर निकल खड़े हुए। उस समय राजकर्मचारियों और सारे पुरवासियोंकी विकलावस्थाका कुछ ठिकाना नहीं रहा। मालूम होता था मानों सारी दुनियाका शोक अयोध्यामें ही उमड़ आया है। कोई भी प्राणी अयोध्यामें ऐसा नहीं था जिसने इस अश्रुनदीमें अपने दो चार बूँद आँसू न मिलाये हों। परन्तु स्वयं राजा हरिश्चन्द्र और उनकी रानी दोनोंही दृढ़ थे, लेकिन जब नन्हे से बालक रोहितने रो रो कर कहना आरम्भ किया कि "बाबा! वह गुदगुदे बिछौने और वह

सुन्दर सजी सजायी अटारी छोड़कर क्यों हम लोग अन्यत्र जा रहे हैं? मैया! ये राहके कङ्कड़ तो पैरोंको बड़ी पीड़ा देते हैं। जननी! धूपके मारे तो प्राण ओठोंपर आ गये हैं" तब तो प्रशान्त महासागरके समान राजा हरिश्चन्द्रका चित्त भी चलायमान होने लगा। जननी अपनी गोदमें बच्चे को उठाकर, उसका मुँह चूम कर, उसके गालोंपर अपने मातृप्रेमसे मिले हुए अश्रुविन्दु बरसाने लगी। अहा! विधाताने माताका हिया भी कैसा प्रेममय, वात्सल्यमय, और सुधासिञ्चित बनाया है। जिनकी कोमलताकी कल्पना भी मानव-बुद्धिके परे है; वैसी ही सुकोमल सामग्रियों से उस सर्वसृष्टिकर्त्ताने माताका हृदय गढ़ा है। अगर ऐसा न होता तो बच्चेके मुँहसे ज़राभी कष्टकी बात सुनतेही क्यों माता व्याकुल हो जाती है? क्यों उसका कलेजा टुकड़े टुकड़े हो जाता है और आँखोंसे आँसूओंकी लड़ी बँध जाती है?

गोदमें बच्चे को लिये हुए शैव्या हरिश्चन्द्रके पीछे पीछे चलने लगी। जिस ज़मानेकी बात हम लिखते हैं उस समय चलने फिरनेमें बड़ी असुविधा होती थी। क्योंकि तब अब जैसी पक्की सड़कें हर जगह नहीं थीं। बीच बीचमें बड़ी बड़ी विकट बनराजि थीं जिनमें भयङ्कर जानवरोंका वास रहा करता था। पाठक अनु·

मान कर सकते हैं कि बिना किसी प्रकारकी सवारीके स्त्रीपुत्रको लेकर निरुद्देश्य यात्रा करनेमें राजा हरिश्चन्द्रको कितना कष्ट उठाना पड़ता होगा! जिस बिचारी राजपत्नीको कभी ज़मीनपर पैर रखनेकी भी नौबत नहीं आयी थी, उसे कण्टकमय काननपथमें विचरण करते हुए कितनी यातना उठानी पड़ती होगी, इसका स्मरण भी हृदयमें दुःखकी नदी बहा देता है।

राजाने सोचा कि अब तो सारी पृथ्वी मैंने विश्वामित्रको ही दे डाली; इसलिये मेरे रहने योग्य स्थान अब काशीके सिवाय और कोई नहीं है; क्योंकि काशीपुरी भगवान् शङ्करके त्रिशूलपर बसी है! ऐसा विचार उत्पन्न होते ही, उन्होंने काशीके रास्ते पर अपना पैर रखा और एक महीने चलकर पुण्यपुरी काशीमें पहुँचे। राजाने एक महीनेमें विश्वामित्रको दक्षिणा देनेकी बात कही थी। महीना समाप्त हो आया था, केवल एक ही दिन शेष था। इसी समय विश्वामित्र उनके सामने आ धमके और बोले, "हे राजा! महीना ख़तम हो रहा है, अब हमारी दक्षिणा चुका डालो और नहीं तो कह दो कि हम नहीं देंगे। हरिश्चन्द्रका कलेजा विश्वामित्रकी इन बातोंसे बिंधसा गया। वे कहने लगे, "हे द्विजराज! हम आपकी दक्षिणा बहुत जल्दी चुकाये देते हैं। आप घबराएँ नहीं। कल

का दिन अभी बाक़ी है। कल संध्यातक आपकी दक्षिणा नहीं दे सकूँगा तो अलबत्ते मेरी प्रतिज्ञा झूँठी हो जायगी। अभी एक महीना पूरा होनेमें एक दिन और है, अवसर रहतेहो मैं अपने जीवनके व्रतको भ्रष्ट नहीं करूँगा। प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं होनेसे, मेरा ज़िन्दगी भरका यज्ञानुष्ठान, सत्यपालन और सारे धर्मकर्म नष्ट हो जायँगे। इसलिये आप कल सन्ध्या तक दम धरें, मैं अपनेको, अपनी स्त्रीको और अपने इस नन्हे से बच्चे तकको बेच कर भी आपको आपकी प्राप्य दक्षिणा अवश्य ही चुका दूँगा। हरिश्चन्द्रका हृदय पत्थरसे भी कड़ा है—उसने बहुत कुछ सहा है—बहुत कुछ सह सकता है। आप यह ठीक जान रखें कि—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत् व्यौहार।
पै दृढ़ श्रीहरिश्चन्द्रको, टरै न सत्यविचार॥

हरिश्चन्द्रके इन गर्वीले बचनोंको सुन, विश्वामित्र-जी ही जीमें बहुत कुढ़ गये और आपही आप यह कहते हुए चले गये कि "अच्छा यही सही। बचा जीको अपने सत्यवक्ता होनेका बड़ा अभिमान है। देखेंगे कल साँझ तक इनको कौनसा पट्ठा मिलता है जो इन्हें सोना देता है। कल, हरिश्चन्द्र! तुम्हारी अन्तिम परीक्षा है! कल ही तुम्हारे नामपर कलङ्क-कालिमा पुत जायगी और तुम्हारी सत्यवादिता चूल्हेमें चली जायगी।"

विश्वामित्र तो चले गये ; लेकिन राजा बड़े चिन्ता-सागरमें डूबने उतराने लगे। उनका सुमेरु का सा अचल हृदय भी डिगने लगा। कौन उपाय करूँ, जिसमें विप्र की दक्षिणा प्रदान कर उऋण होऊँ। जब कोई उपाय नहीं सूझा, तब लाचार हो वे गली गली सड़क सड़क यह कह कह कर पुकारने लगे—"जिस किसीको नौकर दाई मोल लेनी हो वह जल्द आवे। दो अनाथ इस समय अपना जीवन सिर्फ ढाई भार सुवर्णके बदले देनेको प्रस्तुत हैं।" अहो ! सचमुच हरिश्चन्द्रने कहा था कि उनका हृदय पत्थरसे भी कड़ा है !! जिस मुखसे कभी दीनवाणी नहीं निकली, दुष्ट कालने उसका भी मुँह खुलवा ही दिया !!! बस हद हो गयी। प्रतिज्ञा कैसे पूरी की जाती है, यह सीखनेकी लिये राजा हरिश्चन्द्रसे बढ़कर उदाहरण कहीं नहीं मिल सकता। दानियोंमें श्रेष्ठ,ससागरा पृथ्वीके एक छत्रधारी, राजा हरिश्चन्द्रके मुँहसे ऐसी करुणा वाणी क्यों कढ़ रही है ? वे संसारको दिखाते हैं कि उन्होंने ब्राह्मणको सोना देने की जो प्रतिज्ञा की है उसके आगे उनके मान, मर्यादा, स्त्री पुत्र, यही क्यों अपनी प्राणों तक का भी कुछ मूल्य नहीं है। अगर कहीं आज कैसे दानी होते, तो पहले ही विश्वामित्रको धक्के दिलवाकर महलके बाहर कर देते ! इतना कष्ट भला काहेको कपार पर लेने जाते ?

लेकिन नहीं संसारको जिस अद्भुत सत्यवादिता और अतुलनीय प्रतिज्ञा पालन का उदाहरण दिखानेके लिये उन महात्मा का जन्म हुआ था, अगर वे बातके धनी न होते तो संसार को वह आदर्श कहाँसे प्राप्त होता? अस्तु—

आज ही बस अन्तिम दिन है। अगर कहीं आज भी कोई ग्राहक नहीं आया, तब तो संसारके आगे मुँह दिखाने लायक हरिश्चन्द्र नहीं रहेंगे। इस समय वे मृत्यु भी नहीं चाहते—क्योंकि मृत्यु होनेसे वे अपना वचन पूरा करनेसे वञ्चित हो जायँगे; संसार उनके नामको यह कहकर कलङ्कित करेगा कि विप्रकी दक्षिणा चुकानेके डरसे हरिश्चन्द्रने आत्महत्या कर ली! यह अपमान! मरे बाद भी ऐसी कलङ्क-रटना हरिश्चन्द्रको आत्मा कैसे सहन कर सकेगी? लेकिन नहीं अभी इतना घबराना काहेको? सूर्य्यवंशके आदि पुरुष सूर्य्यदेव अभी अस्ताचल को नहीं गये हैं। उनके अस्त होते होते निश्चय ही मैं विश्वामित्रकी दक्षिणा चुका डालूँगा। हृदय में ऐसी दृढ़ आशा बाँधकर राजा नगरकी परिक्रमा करने लगे। साँझ होते होते, एक ब्राह्मण अपने कुछ शिष्योंको साथ लिये हरिश्चन्द्रके पास आकर बोला, "क्यों जी! तुम्हीं न इस नगरमें कई रोज़ से एक दाई बेचनेका ढिंढोरा पीट रहे हो?

बोलो, वह दासी कहाँ है?" हरिश्चन्द्रने अपने कुसुमसे कोमल, पाषाणसे कठिन कलेजे को मज़बूत कर उँगली से अपनी आयौवन सहचरी, एक मात्र प्राणाधिका पत्नी, शैव्याको दिखलाकर कहा, "महाराज! यही दासी मैं बेचना चाहता हूँ। यह आपके घरके सारे काम धन्धे करेगी। इसके साथ इसका यह बच्चा भी जायगा। लेकिन इसका मूल्य सवा भार सोना आप को देना होगा।" ब्राह्मण ने उसी दम यह मूल्य चुकता कर दिया और हरिश्चन्द्रकी उस प्राणमनविनोदिनी प्रिय स्त्री को अपनी चेरी बनाकर ले चला। पाठक! विचारिये तो हरिश्चन्द्रके लिये यह कैसी कठिन परीक्षा का समय उपस्थित था! लेकिन वाह रे राजा हरिश्चन्द्र! तुम्हारे धैर्य, तुम्हारी धर्म प्रियता की तुलना इस अवनी-मण्डल क्या त्रिलोकीमें भी दुर्लभ है! संसार के एक मात्र बन्धन स्त्री पुत्रको भी बिना एक बूँद आँसू गिराये तिनकेकी तरह दूर करना, हरिश्चन्द्र! तुम्हारा ही काम है। मेरु! तुम अपना अचल भाव त्याग दो; भगवति वसुधे! तुम भी अब से अचला कहाना छोड़ दो; दानवीर हरिश्चन्द्र ने जैसी अच्चल वृत्तिका परिचय दिया है उसके आगे तुम्हारी अचलता का कुछ भी हिसाब नहीं है।

आगये—सूर्यके अस्ताचल पहुँचनेमें भी देरी नहीं

है, इधर विश्वामित्र बाबा भी आ गये। आते ही लाल लाल आँखें कर विश्वामित्र बोले, "क्यों रे हरिश्चन्द्र! तेरे लिये अब मैं कितना हैरान होऊँ? ला, अभी मेरी दक्षिणा चुका, नहीं तो समझ लूँगा। काशीके हज़ार गुण्डों में से एक तू भी है।" हरिश्चन्द्रने हाथ जोड़ आधी दक्षिणा आगे रखकर कहा, "महाराज! यह इतना द्रव्य स्वीकार कीजिये, शेषके लिये अभी सूर्यास्त तक आप प्रतीक्षा कीजिये।" यह कह हरिश्चन्द्र फिर राहों पर अपनी टेर लोंगोंको सुनाने लगे। थोड़ी ही देरमें एक डोमड़ा, बड़ी विकट मूर्त्ति बनाये, हाथमें बाँसका अधजला डण्डा लिये, उनके सामने आया और बोला, "क्यों बे गुलाम! तू अपनेको कितना मोल लेकर बेचना चाहता है? अभी बोल, मुझे बहुत से काम हैं।" हरिश्चन्द्रने कहा, "महाशय! आप इन विप्र महाराजको सवा भार सुवर्ण देदें, फिर मैं आपकी दासता करनेको प्रस्तुत हूँ।" डोमने चटपट उतना सुवर्ण दे हरिश्चन्द्र से कहा, "मैं काशीके डोमोंका चौधरी हूँ, तुम मेरी ओर से श्मशानकी चौकसी करो। वहाँ जो कोई मुर्दा जलाने आवे उससे आध गज कपड़ा और फुँकवाई के पैसे बिना लिये तुम मुर्दा जलाने मत देना। बस, तेरे सुपुर्द यही काम है।" माथा नवा कर हरिश्चन्द्र ने कहा, "प्रभुकी जैसी आज्ञा।"

उस दिनसे हरिश्चन्द्र श्मशानके चौकीदार हुए। अर्द्धरात्रिमें, दिनमें, दोपहरमें, सुबहमें, साँझको, कभी उनको विराम नहीं है। काशीमें मुर्दों का टोटा कभी नहीं रहता। बराबर एक एक मुर्देके जलाने वालोंसे, मालिक के टिकसके लिये, हुज्जत करनी पड़ती है; नहीं तो मालिकी आज्ञाका लङ्घन होता है। हाय रे काल! धन्य तेरी विलक्षण माया! जो एक दिन पृथ्वीके सर्व श्रेष्ठ दानी थे वे आज आधगज़ वस्त्रके लिये लड़ाई करते हैं। तेरी भी, समय! कैसी विषम अन्ध-लीला है, कुछ समझमें नहीं आती।

एक दिनकी घटना कहते हैं, रातकी दो पहर बीत चुकी हैं। शून्य श्मशान स्थलीकी नीरवता कभी उल्लुओं-की ध्वनि, कभी श्वानोंके विकट रव और कभी गिद्धों के पङ्खोंकी फटफटाहट से भङ्ग हो जाती है। भगवती जाह्नवी अपने मनसे बहती जा रही हैं, उनकी कलकल ध्वनि भी इस भयावनी रातमें दिलको दहलानेके लिये काफ़ी है। लेकिन सत्य हरिश्चन्द्रको अपने प्रणके आगे प्रकृतिकी भयङ्करता की ओर कुछ भी ध्यान नहीं है। उनकी पहली प्रतिज्ञा थी, विश्वामित्रको राज्य देना सो उन्होंने दे डाला; दूसरी थी उनको दक्षिणा चुकाना सो भी उन्होंने "वेंचि देह दारा सुवन" देही दी। अब तीसरी है, प्रभुकी आज्ञाका अनुसरण। उसे भी वे शान्त

हृदयसे पालन कर रहे हैं। लेकिन शायद आज उनकी भयङ्कर परीक्षा है। इसीसे प्रकृतिने अपनी भयङ्करता की मात्रा बढ़ा दी है—सहनशील हरिश्चन्द्रको भी अपने स्त्री पुत्रकी याद आज बहुत विकल कर रही है। आज सारे लक्षण ही विपरीत दिखाई दे रहे हैं।

सहसा रात्रिकी प्रगाढ़ निस्तब्धताको भेद करती हुई एक रमणीकी करुण रोदन-ध्वनि हरिश्चन्द्रके कानोंमें पड़ी। सागर का सा अथाह, मेरु का सा अचल, हिमाचल का सा उन्नत, वज्रका सा कठोर—हरिश्चन्द्रका हृदय भी न जाने इस रुलाईको सुनकर क्यों पिघल गया? न जाने कितनी सैकड़ों हज़ार बार, उनकी आँखोंके आगे, कितने लोग रोते हुए अपने एकान्त प्रेम-भाजन की अन्तिम क्रिया कर चुके होंगे; कितनी ही पुत्र-वियोगिनी, पति-वियोगिनी, अवलम्ब-हीना अनाथिनियोंका करुण-क्रन्दन उनके कानोंमें पड़ा होगा; लेकिन उन्होंने कभी अपने जीमें दयाका उद्रेग भी नहीं होने दिया। "जिसको अपनी देह बेच दी वह चाहे चाण्डाल का काम ले, चाहे वेद-पाठी का, यह बात उसकी इच्छा पर है। हमारा काम उसकी आज्ञा पालन करना ही है।" हरिश्चन्द्र सदा यही सिद्धान्त अपने मनमें रखते हुए काम करते रहे।

लेकिन आज क्यों उनका अचल चित्त भी चलायमान हो रहा है, सो उनकी समझ में नहीं आता।

हरिश्चन्द्र पुरुष हैं—मनको संयत करना हरिश्चन्द्र खूब जानते हैं। अपनी कोमल वृत्तिको उन्होंने उसी दम जलाञ्जलि देदी। हृदयको कड़ा कर मेघ की तरह गर्ज कर बोले, "कौन है? ख़बरदार!! देखो बिना मेरी आज्ञाके कोई मुर्दा न जलाने पावे। मैं अभी आता हूँ।" उनकी इस चिल्लाहटसे भी वह रोरुद्यमाना रमणी चुप नहीं हुई, उसका तार नहीं टूटा। हरिश्चन्द्रने उसके पास पहुँचकर देखा, रमणी की गोदमें एक बड़ा ही कोमल बालक पड़ा है। न जाने क्या जीमें आया, हरिश्चन्द्रके नयनोंसे दो चार बूँद आँसू टपक पड़े। कहने लगे, "देखो यहाँका नियम है कि कोई बिना आधा गज़ कपड़ा दिये मुर्दा जलाने नहीं पाता। इसलिये तुम मुझे मेरे मालिकका टिकस दे दो; फिर अपना काम करो।" लेकिन शायद स्त्रीने उनका कहा नहीं सुना। वह पहलेहीकी भाँति रोती रही, कई बार जब उन्होंने उससे वही बात कही तब वह बोली, "हाय! भगवन्!! अब इस अबला-नारीको और कितने दिन तक दुःख देते रहोगे? अब यह पापी प्राण किस लिये देहमें टिके हैं? मा! पृथ्वी! तुम क्यों नहीं दो टुकड़े हो जातीं कि मैं

समा जाऊँ। हा हन्त! दुःख झेलते झेलते इस अभागिनीका तो कलेजा चकनाचूर हो गया! राज्य गया, पति एक नीच डोमड़के दास हुए, मैं विप्रके घरकी टहलुनी हुई, यह सब कष्ट तो सहने योग्य थे। पर इतने प्यारका, इतनी आराधनाका, रोहित स्वर्गवासी हुआ, विधे! तुमने क्या यही दुःख दिखानेको अब तक प्राणोंको बचा रखा था? हाय! रोहित!! तुम्हींको देख देख कर तो मैं पतिका असह्य वियोग भी सहा करती थी पर अब इस निरवलम्बिनीकी टूटी नैया किसके सहारे चलेगी? लल्ला मेरे! मुझे उदास देख, तू तो हरदम मेरे गले लग कर पूछने लगता था कि 'मैया तू क्यों उदास है! उठ, हँस बोल, नहीं तो मैं आज भी नहीं खाऊँ पीऊँगा।' पर बेटा! आज यह चौधारे आँसू बहते देखकर भी क्यों तुम्हारे मनमें दया नहीं उपजती? बच्चे! ऐसी निठुरता तेरे इस बाल्य हृदयमें कहाँसे आयी? हाय! विपद् पर विपद्, मरे पर कोल्हूमें पिसना—अब इससे अधिक यातना क्या होगी? मरे लालको जैसे तैसे मसानमें उठा लायी, एक टुकड़ा कपड़ा भी नहीं उढ़ाया, अब इधर मसानके चौकीदार आधागज़ कफन माँगते हैं, सो कहाँ पाऊँ? हायरे भाग्य! तू कैसे कैसे खेल खिलाता है? निठुर दैवको मेरी इतनी दुर्दशा देखकर भी तर्स नहीं आया! चक्र-

वर्त्ती राजा हरिश्चन्द्रके बेटे रोहितको मरे पर कफ़नका भी ठिकाना नहीं! यह विधि-विड़म्बना नहीं तो और क्या है?" इस प्रकार रानी शैव्या (क्योंकि शायद इन वाक्योंको पढ़नेसे पाठकोंको मालूम हो होगया होगा कि यह रमणी हरिश्चन्द्रकीपत्नी ही थी) बकती बकती भूमिपर बेहोश हो गिर पड़ी। उठकर देखती क्या है कि उनके मरे बालकको गोदमें ले मसानका वह चौकीदार भी पड़ा रो रहा है—उसका रोदन अन्तः-सलिला सरस्वतीकी धाराके समान गुप्त होकर भी प्रखर है और रानी शैव्याका रोदन बाढ़के पानीके समान बड़ा ही तीव्र, बड़ाही व्यापक और बहुत ही स्पष्ट है। देखते ही उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि अभी अभी जो पुरुष इतनी निष्ठुरताके साथ उनके कटेपर नोन छिड़क रहा था वही उनके समान दुःखी हो उनके प्राणप्रिय बालकके शवको हृदयसे लगाये चुपचाप वारि वर्षन कर रहा है। तब सहसा उन्हें स्मरण हो आया कि मेरे पूज्य पतिदेव भी तो श्मशानकी ही चौकसीपर नियत हैं। उस समय राजाकी राखसे लपेटी हुई सोनेकी मुहर कीसी दपदपाती हुई मुख-कान्ति देख पहचानकर रानी उनके पैरोंपर गिर पड़ी और फिर तो उन दोनों मातापिताने जो दुःखकी नदी वहाँ बहायी, उसका यथार्थ वर्णन करना असम्भव है।

शोकसे धीरज छूटता है, धीरज छूटनेपर धर्म अधर्म का विचार नहीं रहता है। लेकिन हरिश्चन्द्र अपने ही मुखसे बारम्बार कह चुके हैं कि उनका हृदय वज्रसे भी कठिन है। इससे इस महाविपद्में भी वे अपने धर्मको खूब जानते हैं। थोड़ीदेरमें अश्रुविन्दुओंको वस्त्रसे पोंछ, स्त्रीको समझाते हुए वे कहने लगे, "देखो! मृत्यु एक अवश्यम्भावी बात है, वह किसीको छोड़ती नहीं। किसीको आज आयी, किसीको दस दिन बाद, लेकिन वह रुकनेवाली नहीं। सभी जीव धारी एक न एक दिन उसके शिकार ज़रूर होंगे। जब भाग्यमें पुत्र-शोकही बदा था तब वह क्यों न भोगना पड़े? देखो प्रिये! तुम यह व्यर्थका शोक जाने दो, पुत्रको अन्तिम क्रिया करो। संसारमें मनुष्यकी कोई वस्तु स्थायी नहीं है। सब कुछ पानीके बुलबुलेकी तरह है। अभी है, दूसरे ही क्षण नहीं हो जाता है। इस लिये तुम मेरे मालिकका कफन देदो और राजकुमारका

* * * * * * *

रानी०—प्रियतम! किस कलेजेसे तुम यह वज्र-वाणी अपने मुँहसे निकालते हो?

राजा०—प्रिये! मैं भी मनुष्य हूँ, मुझे भी अपने प्यारे पुत्रके मरनेका उतनाही शोक है जितना तुम्हें है; लेकिन भेद केवल इतना ही है कि तुम व्यर्थ शोक

कर रही हो और मैंने यह समझ लिया है कि इस व्यर्थ की हायहायमें कुछ नहीं है, धर्मही आदमी का परलोकमें साथ देता है। इसलिये जो गया उसका मोह छोड़कर, स्वामीकी आज्ञा पालनेमें तुम मेरी योग्य सहधर्मिणीकी भाँति हाथ बँटाओ।'

इस प्रकार हरिश्चन्द्रके धैर्य देनेसे रानीका शोक कुछ कम हुआ और अपने स्वामीके सत्यकी रक्षाके लिये उन्होंने पुत्रकी अन्त्येष्टि क्रिया जिसमें करने पावे इस लिये अपने पतिको अपना आँचर फाड़ कर देदिया और सत्यसन्ध हरिश्चन्द्रने भी हर्ष-गद्गद चित्तसे वह वस्त्र हाथ फैला लेलिया। स्वामीके धर्मकी रक्षा करनेमें वह समर्थ हुई; इसलिये रानीके मुखपर भी प्रसन्नताकी ज्योति छिटक पड़ी! बस, यहींपर महाराजके अलौकिक सत्यपालनका व्रत समाप्त हुआ और तत्क्षण आकाशसे देवतागण पुष्प-वृष्टि करने लगे। स्वयं भगवान् विष्णुने चतुर्भुज रूपसे आकर रोहितको जिला दिया और धर्मने स्वयं प्रकट होकर कहा कि वे ही उनकी परीक्षाके लिये चाण्डाल बने हुए थे। विश्वामित्रने राजर्षि हरिश्चन्द्रको लाख लाख धन्यवाद, साधुवाद और आशीर्वाद दिये और सारे संसारने उनकी सत्य-निष्ठाकी जैसी सराहा उसका प्रमाण इससे बढ़कर क्या होगा कि आजतक प्रत्येक भारतवासी उनकी

कीर्त्ति-कथाका गानकर अपनेको परम पुण्यवान् समझा करता है! धन्य हरिश्चन्द्र और धन्य उनकी सत्य-प्रियता!! लाख लाख यातनाएँ उनके आगे धूल थीं। बस ध्यान था केवल अपनी प्रतिज्ञाका—अपने मुखसे निकले हुए वाक्यका, अक्षर अक्षर प्रतिपालन करनेका। इसीसे तो जिनके दर्शन बड़े बड़े योगी मुनियोंको भी दुर्लभ हैं उन भक्तभयहारी चक्रधारीने स्वयं उन्हें आ दर्शन दिये। मरा बेटा जी उठा। उनको सत्यसे डिगा देनेके लिये उधार खाये बैठे हुए विश्वामित्रको भी यह स्वीकार करना ही पड़ा कि सचमुच हरिश्चन्द्र! तुम्हारे जैसा दानी और सत्यवादी न हुआ और न होने की सम्भावना है। अगर हरिश्चन्द्र ऐसे न होते तो भारतको सत्यपालनका आदर्श कहाँसे मिलता? राजा दशरथ ही भला किस बिरतेपर यह गर्वीले बचन उचारते कि :—

रघुकुल रीति सदा चलि आयी।
प्राण जायँ वरु बचन न जायी॥

और गोस्वामी तुलसीदासजीके इस उपदेशमय दोहेका जीता जागता उदाहरण ढूँढनेके लिये कहाँ कहाँ भटकना पड़ता—

सत्यवचन आधीनता परतियमातुसमान।
ये हू पै हरि ना मिलैं तो तुलसिदासबिचवान॥

हरिश्चन्द्र ! तुम्हींने इन महात्माओंकी लाज रख ली अन्यथा संसारको ये बातें अत्युक्ति ही मालूम पड़तीं ; पर तुमने दिखला दिया कि इसमें सत्यताही नहीं, पूरी पूरी सत्यता है ; इसीलिये इन महानुभावोंकी कही हुई बातें सदासे सबको मान्य हो रही हैं ।

कर्त्तव्य-पालन।

चण्ड।
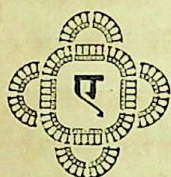
क दिन मेवाड़के राणा लाखासिंह अपने परिषदों और सामन्तोंके साथ राज-सभामें बैठे हुए थे। ऐसेही समय उनके पास मारवाड़के राजा रणमल का दूत नारियल ले कर आ पहुँचा और निवेदन किया कि "महाराज! मारवाड़-नरेशने अपनी लड़की राजकुमार चण्डके साथ व्याह देनेकी इच्छासे यह नारियल ले आपकी सेवामें मुझे भेजा है।"

उस समय राजकुमार चण्ड सभामें मौजूद न थे। राजाने स्वयं उस दूतसे मारवाड़-नरेशकी कुशल-बात पूछी और उसकी पूरी पूरी मिहमानदारी की। दूतके बैठ चुकनेपर राजाने अपनी पकी दाढ़ीपर हाथ फेरते फेरते कहा,—"इस बूढ़ी दाढ़ीकी अब क्या क़दर है? अब हमारी दिलबस्तगीको कौन ऐसे पैग़ाम भेजेगा?" राणाकी इस दिल्लगीसे सभी सभासद हँसने लगे।

सहसा राजकुमार भी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने भी राणाकी की हुई दिल्लगीका ज़िक्र सुन लिया। सुनते ही बोले, "जिस रमणीको पिताने मुहूर्त्तमात्रके लिये भी अपने हृदयमें स्थान दिया, वह अब मेरी पत्नी कदापि नहीं हो सकती। जै दफ़ा वे इस बातको सोचते तै वार उनके मनमें यही आता कि यह कार्य उनके लिये एक बारगी अनुचित है। धर्मतः वह स्त्री आजसे मेरी माँ हुई। जब राणाको यह ख़बर मिली कि चण्ड इस विवाह पर राज़ी नहीं है; तब उन्होंने राजकुमारको बुलवाकर कई प्रकारसे समझाया कि देखो यह सम्बन्ध तुम्हें अवश्य कर लेना उचित है। हम तुम्हारे पिता होकर तुम्हें आज्ञा देते हैं तो फिर तुम्हें किस बातकी रोक है? पर राजकुमारने एक न सुनी। तब राणाने यह सोचकर कि नारियल फेर देनेसे रणमलका अपमान होगा, कहा, "अगर तुम विवाह नहीं करोगे तो लाचार होकर इस बुढ़ापेमें मुझे शादी करनी पड़ेगी। लेकिन देखो तुम इस अपने हठधर्मीपनसे मेरी बुढ़ौतीकी शान्ति नष्ट कर रहे हो; इसलिये तुम्हें भी राज्यसे हाथ धो बैठना होगा। तुम इस बात को निश्चय जानो कि इस रमणीसे जो पुत्र होगा वही राज्य पावेगा, तुम नहीं।" लेकिन राणाकी इन बातोंसे चण्डको कुछ भी अचम्भा या अफ़सोस नहीं

हुआ। वे पर्वतकी तरह अचल होकर जहाँके तहाँ खड़े रहे। बोले, "हाँ पिताजी! मैं एकलिङ्ग भगवानकी शपथ खाकर कहता हूँ कि पहले हीसे मैंने यह निश्चय कर रखा था कि इस रमणीसे चूँकि अब मेरी शादी नहीं हो सकती इसलिये पिताजी इसे अङ्गीकार करेंगे हो; तब इससे जो सन्तान होगी वही राज्याधिकार पावेगी, मैं नहीं। मुझे राज्यका लोभ नहीं है—इस लालचमें आकर मैं अपना धर्म—अपना कर्त्तव्य—नहीं भूल सकता।

ख़ैर, राणाने रणमलकी लड़कीसे शादी की। उससे एक लडका भी हुआ जिसका नाम मुकुल जी पड़ा। पाँच वर्षकी उमरमें उसका उपनयन (जनेऊ) हुआ। इसी समय राणाको मालूम हुआ कि पुण्यतीर्थ गयाधाममें मुसल्मानोंने चढ़ाई की है। यह सुन, वे युद्धमें जानेकी तैयारी करने लगे। लेकिन इस बूढ़ी उमरमें लड़ाईसे लौटकर घर आनेकी उम्मीद नहीं थी; इसलिये जिससे अन्तमें राज्यमें किसी तरहकी गड़बड़ या गृह-कलह पैदा न होने पावे इसका उपाय सोचने लगे। उन्होंने लड़ाईमें जानेके पहले इसीका ठीकठाक करना कर्त्तव्य समझा, उन्होंने तब चण्डको बुलाकर कहा, "देखो लड़के! मैं जिस महाव्रतका अनुष्ठान करने जा रहा हूँ उसमें मेरा जीवन भी चला जा सकता है; इसलिये

बतलाओ मुकुल जी की जीविका कैसे चलेगी? इसका कोई प्रवन्ध किये बिना, मैं यहाँसे कैसे जा सकता हूँ?"

तेजस्वी वीर चण्डने जवाब दिया, "मेवाड़का राज्य छोड़ दूसरी जीविका क्यों ढूँढते हैं? वे मेवाड़के सिंहासन पर बैठ देश-शासन करेंगे—निष्किञ्चन पुरुषोंकी भाँति क्या नौकरी करेंगे?"

इस प्रकार सरलता और उदारतासे भरे हुए उत्तरको सुनकर राणा बहुत प्रसन्न हुए। कहीं पिताजी मेरे कहेको झूठ नहीं समझें; इसलिये चण्डने चाहा कि उनके गया जानेके पहलेही मुकुल जीको सिंहासन पर बैठा दे। उनकी दृढ़प्रतिज्ञा और अद्भुत आत्मत्यागको देखकर सबके सब आश्चर्यके समुद्रमें डूब गये। बहुत शीघ्र ही मुकुलका अभिषेक हुआ। चण्डने सबके पहलेही उनके प्रति अनुगत और विश्वस्त रहने की प्रतिज्ञा की और राजाका जैसा सम्मान किया जाता है वैसा सम्मान प्रकट किया। इस अलौकिक त्यागके बदलेमें उस दिनसे मन्त्रिमण्डलमें चण्डको सबसे ऊँचा आसन मिला और यह भी नियम हुआ कि आजसे जिस किसीको जागीर वगैरह दी जायगी उसके दानपत्र पर राणाकी दस्तखती मुहरके ऊपर ही चण्डका दस्तखत रहेगा। तबसे आजतक चण्डके वंशवाले जो

मालुंनाधिपति कहे जाते हैं उनका निशान प्रत्येक दानपत्रके ऊपर ही अङ्कित रहता है।

चण्डके हृदयमें जो सब सुन्दर गुण थे उनकी सीमा नहीं है। उनका महत्त्व, वीरत्व, सहिष्णुता, उदारता और अपूर्व आत्मत्याग इस छल कपटसे भरे हुए संसारकी सामग्री नहीं थे। उनका छोटा भाई मुकुल बहुत कमसिन था; इस वजहसे सारे राज-काज इन्हें ही करने पड़ते थे। लेकिन यह बात मुकुलकी माताको सह्य नहीं थी कि चण्ड राज्यके किसी काममें हाथ डालें। उन्होंने पहले सोचा था कि बेटा जबतक नाबालिग़ रहेगा तबतक वेही राज्य चलावेंगी पर उनकी आशा पूरी नहीं हुई; इसलिये वे रात दिन जला करती थीं। वे कृतज्ञ होनेके बदले चण्डका अनिष्ट करनेको उतारू हो गयीं। जिसके आत्मत्याग और उदारतासे ही उनका बेटा राजा बना, उस परोप॰ कारी देवताका सर्वनाश करनेको वे हर सूरतसे तैयार हो गयीं। एक दिन किसी काममें एक मामूली दोष पाकर वे गुस्से में आकर चण्डसे कहने लगीं, "चण्ड राज-कार्य मनमानी तरहसे करते हैं। वे राणा कहकर अपना परिचय नहीं देते हैं सही, पर यथार्थ पूछिये तो वे राज्यपर अपनी पूरी पूरी हुकूमत रखना चाहते हैं और रखते भी हैं।"

चण्डको ये बातें बहुत तीखी लगीं। शत्रु की नङ्गी तलवार वे मज़ेमें सह सकते थे, पर ये बातें उनको बर्दाश्त नहीं हुईं। वे उसी समय अपनी सौतेली मासे कहने लगे, "देखो! अगर मुझे राजा बननेकी अभिलाषा होती तो तुमको आज सब लोग राज-माता नहीं कहते। ख़ैर, अब तुम्हारे मनमें सन्देह हुआ है तो लो मैं अब चलता हूँ, तुम अपना राज्य आप सँभालो, लेकिन देखना जिसमें वंशका गौरव नष्ट न हो।" यह कह उदार-हृदय चण्ड चित्तौड़ छोड़ मारवाड़ राज्यमें चले गये। वहाँके राजाने उनको बड़े आदरसे अपने यहाँ रखा और हल्लार नामक जनपद उनको जागीरमें दे दिया।

चण्डके चितौरसे चले जानेपर मुकुलके मामा और नाना आकर राज्यके हर्त्ताकर्त्ता बने। धीरे धीरे ये दोनोंही रक्षक, भक्षक हो गये। रणमलही असली राजा हो उठे और मुकुल उनके हाथका पुतला हो गया। पहले तो मुकुलकी माको ये सब कपटकी बातें मालूम नहीं हुईं; पर पीछे वह भी समझ गयी कि ये लोग बिना मेरे पुत्रको मारे छोड़ेंगे नहीं और मेवाड़ मारवाड़के आधीन होकर रहेगा। उस समय उसकी आँखें खुलीं और उसने ठीक समझ लिया कि चण्डको चलता कर, उसने बड़ा बुरा काम किया है।

जब कोई उपाय नहीं सूझा तब उसने एक आदमी भेजकर चण्डको सब बातें कहला भेजीं और उससे क्षमा माँगी। चण्डने सब बातें विचारकर मेवाड़में आकर उसे राठोड़ोंके हाथसे छुड़ाया। जब तक वे जीते रहे तबतक अपने छोटे भाईकी आधीनता स्वीकार कर राज्यका मङ्गल साधन करते रहे। संसारमें ऐसे ही नर रत्नोंका जन्मग्रहण करना सार्थक है जो अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहकर सदा अपने वंशकी गौरव-रक्षा करते हैं। कवि कहते हैं—

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्॥

अर्थात्—संसारमें रोज़ही कितने ही आदमी जन्मा और मरा करते हैं पर जन्म ग्रहण उसीका ठीक है जिसके द्वारा कुलकी मर्यादा बढ़े। महावीर चण्डने जिस प्रकार अलौकिक आत्मोत्सर्ग, अकपट त्याग और असाधारण कर्त्तव्य-निष्ठाका परिचय दिया था, वह इस संसारमें, हर जगह, हर समय, मिलना कठिन है। पितृ-भक्ति, प्रतिज्ञापालन, भ्रातृ-सम्मान, राज-भक्ति जिसी गुणमें देखिये उसीमें चण्डकी बराबरी करनेवाला पुरुष कोई विरलाही मिल सकता है। कर्त्तव्यपालनकीही महिमासे मेवाड़के इतिहासमें चण्डका नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखित है।

प्रत्युपकार ।

कुन्ती ।

पाण्डव लोग जब लाक्षा-गृहमें न जले, तब वे नाना स्थानोंमें घूमते फिरते एक चक्रा * नामक नगरीमें आये। यहाँ इन लोगोंने एक ब्राह्मणके घरमें आश्रय लिया। उन दिनों उस नगरका अधिपति एक राक्षस था जिसका नाम था बकासुर। उसके अत्याचारसे वहाँके सभी मनुष्य उत्पीड़ित हो उठे थे। वह जिसीको पाता उसीको मार कर खा डालता था। इस प्रकार जब वहाँकी समस्त प्रजा उसके द्वारा बहुत सतायी गयी, तब उन लोगोंने एक उपाय सोचा कि प्रतिदिन एक आदमी उस राक्षसके निमित्त एक भैंसेपर लदी हुई मिठाई लेकर उसके यहाँ जाया करेगा। वह

* वही एकचक्रा आजकलका आरा नगर है। पाँचों वीर, घसीटा नामा बकासुरकी मूर्त्ति आदि उस समयके कितने ही स्मृति-चिह्न वर्त्तमान हैं। इसका नाम क्योंकर बदल गया, इसका पूरा हाल आरा पुरातत्त्व नामक पुस्तकमें है। लेखक।

उस आदमी और भैंसेके साथ ही उन सारी मिठाइयोंको भी खा जाया करता था। यह उसका नित्यका नियम था। प्रत्येक घरसे इस प्रकार एक आदमी अवश्य उसके पास भेजा जाता था।

जिन दिनों पाण्डव लोग उस ब्राह्मणके घर ठहरे हुए थे उन दिनों वह असुर-राज आधीसे अधिक प्रजाका संहार कर चुका था।

एक दिन पाण्डवोंकी माता कुन्ती चुपचाप बैठी अपने दुःखकी बातें सोच रही थी; इसी समय उन्होंने ब्राह्मणीको बड़ी करुणाभरी ध्वनिसे रोते सुना। अपनी उपकारिणी ब्राह्मण-पत्नीका रोना सुनकर कुन्तीका हृदय पसीज गया! वे चटपट ब्राह्मणीके पास जा पहुँचीं और बोलीं, "हे देवि! आप क्यों इस प्रकार विलाप कर रही हैं। आप पर आज एकाएक कौनसा दुःख आपड़ा है जो आप इसप्रकार हृदयविदारक रोना रो रही हैं?" हृदयको कुछ स्थिर कर ब्राह्मणीने कहा, "हाय! आज मेरे ऊपर जैसी विपत्ति आयी है वह परमेश्वर ही जानता है। हे भगवति! हमारे एक ही लड़का है और आज वह सदाके लिये हमसे बिछुड़ जायगा। हाय! भगवान्!! अब ये पापी प्राण का-हेको शरीरमें टिके हैं? कल्याणी! इस देशमें आजकल दुष्ट बकासुरके मारे कोई सुखकी नींद सोने भी नहीं

पाता। वह नित्य पारी पारीसे एक एक आदमीको भक्षण करता है; जिससे दिन दिन यह नगर जन-हीन होता चला जाता है। आज मेरे ही बेटेकी पारी है इसलिये मेरे दुःखकी आज सीमा नहीं है।" यह कहते कहते ब्राह्मणीकी आँखोंसे गङ्गा-यमुनाकी धारा छूटने लगी। उनका कलेजा धड़कने लगा। देह सारी सर्द हो रही थी। चेहरेका रङ्ग फीका पड़ गया था। यह सारे वृत्तान्त सुनकर कुन्तीने विचारा, "जिस ब्राह्मणदम्पतीने इस निस्सहाय दशामें हमें और हमारे बेटोंको अपने यहाँ आश्रय दिया है उसका उपकार करना हमारा परम कर्त्तव्य है। ऐसा विचार जीमें उत्पन्न होते ही, उन्होंने अपने बेटे भीमसेनको बुलाकर कहा, "हे पुत्र! देखो ब्राह्मणदेवताने हमारा कितना उपकार किया है, जो इस निरवलम्ब अवस्थामें हमें इतने आरामके साथ अपने घरमें स्थान दिया है। जो अपना उपकार करे, उसका उपकार करना हमारा अवश्य ही कर्त्तव्य है। इसलिये तुम जाकर उस दुष्टको मारो।" सुनते ही भीम अपनी माताकी आज्ञा पालन करनेको चले। जब उस दुष्टके द्वारपर पहुँचे तब बोले, "आवे! बकरे! बाहर निकल; तेरे वास्ते आज एक बड़ा मोटा मुष्टण्ड आया है। यदि तू उससे बलवान् होगा तो उसे मार खायगा; नहीं सीधा जहन्नुमकी राह

जायगा। यह कर्कश वाक्य सुन, वह राक्षस अपने घरके बाहर आया और देखा उसके सामने एक पर्वताकार मनुष्य खड़ा है जो उसके लिये लायी हुई कुल मिठाइयोंको आप ही खाता जाता है। एक तो भीम उसके खानेका समय बिताकर आये थे; दूसरे उन्होंने बड़ी कटुवाणी कह कर उसे पुकारा था; तीसरे उसके निमित्त भेजी हुई खाद्य-सामग्रीको वे आपही चट किये जाते थे; इसलिये उस असुरके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा। वह बड़ी तेज़ीसे भीम पर झपटा और ज्योंही चाहता था कि उन्हें पकड़ ले; त्योंही भीमने भीमविक्रमसे उसे पकड़कर ज़मीनपर दे मारा और बलपूर्वक उसकी छातीपर लात धरकर उसकी टाँगें चीर डालीं। वहीं उस पापीका पाप-जीवन समाप्त हो गया। उसकी लाशको उन्होंने घसीट कर बहुत दूर जाकर फेंक दिया। जहाँ उसकी लाश उन्होंने छोड़ दी। वह गाँव आज तक "बकरी" कहा जाता है और जिस रास्तेमें उसे उन्होंने घसीटा था उस जगह एक नाला बहता है जिसे "घसीटानाला" कहते हैं। अस्तु।

भीमके लौटनेमें काफ़ी देर हुई। ब्राह्मणीने कुन्तीसे जाकर पूछा, "हे भगवति! आज आपके दूसरे पुत्र भीम नहीं दिखाई देते! देवी! आपका कैसा

कठिन कलेजा है कि पुत्रको न आया देख कुछ घबरा नहीं रही हो। मेरा तो लाल आज कालका कौर होवे ही गा।" यह कहते कहते ब्राह्मणीके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वह पुक्का फाड़कर रोने लगी। उसकी ऐसी दशा देख कुन्तीने कहा, "देवी! आज मैंने आपके किये हुए उपकारका ऋण चुकानेके लिये अपने बेटे भीमको ही उस राक्षसराजके पास भेजा है। मेरा लड़का बड़ा बली है वह अनायास ही उसको परास्त किये बिना नहीं छोड़ेगा। इसलिये आप कुछ चिन्ता न करें। अगर भाग्य-दोषसे वह मारा भी जाय तो देखो मेरे ये पाँच पुत्र हैं जिनको देख मुझे सब्र होगा; पर यदि कहीं आपका बेटा जाता तो आपके घरका चिराग़ ही बुझ जाता। इसीसे मैंने उन्हें एक घरमें छिपा रखा है।" ब्राह्मणी कुन्तीकी ये उदारताभरी, ऊँचे हृदयका परिचय देनेवाली बातें सुन हर्षसे भर गयी। आनन्दके आँसू उसके नयनोंमें छलछला आये। कुन्तीको उसने लाख लाख धन्यवाद दिये। पर साथ ही उनके बेटेके लिये भी उसे बड़ी चिन्ता हुई।

इसी समय भीम हँसते हुए वहाँ आ पहुँचे और राक्षस-राजके मरनेका हाल कह सुनाया। सारे नगरके लोग उसी दिनसे सुखी हो गये। जहाँ रात दिन हाय २ मची रहती थी, वहाँ रातदिन खुशीकी नौबत बजने लगी।

पाठको! कुन्तीने किस प्रकार अपने उपकार करनेवाले ब्राह्मणदम्पतीको उनकी नेकीका बदला दिया! आप लोगोंको भी क्या वैसा ही प्रत्युपकारी होना उचित नहीं है? जो तुम्हारी भलाई करे उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेसे ही तुम्हारे कर्त्तव्यकी इतिश्री नहीं हो जाती। बल्कि तुम्हें उचित है कि उसकी भी तादृशी सेवा करो जैसी तुम्हें उसने पहुँचायी हो। तभी तुम ऋणमुक्त हो सकते हो—तभी मनुष्य होनेका तुम दावा कर सकते हो अन्यथा नहीं। देखो कवि क्या कहते हैं—

उपकारिणीविश्रब्धेशुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे कथं वहसि।

अर्थात् अपने उपकार करनेवाले, सरल चित्त और विश्वासी पुरुषके साथ जो लोग खुटाई करते हैं उन झूठे लबारोंका बोझ, हे पृथ्वी! तू कैसे सहती है?

कहनेका मतलब यह है कि जो अपने उपकारीकी भलाई नहीं करते अथवा उसके साथ किसी प्रकारकी बुराई कर बैठते हैं वे पापी इस जगत्के भार हैं। इसलिये ग्रन्थके अन्तमें इस प्रत्युपकारकी आदर्श कथाको, जिसमें माता कुन्तीने अपने उपकारीकी भलाईके आगे पुत्रके प्राणोंका भी कुछ मोल नहीं माना, लिखकर

यह सामान्य ग्रन्थकार अब अपने प्रिय पाठकोंसे विदा होता है और आशा करता है कि पाठक कमसे कम एक कथाके आदर्शको अपना लक्ष्य अवश्य ही बनावेंगी जिसमें यह क़लम चलाना एकदम व्यर्थ न हो जाय।

इति शम्।
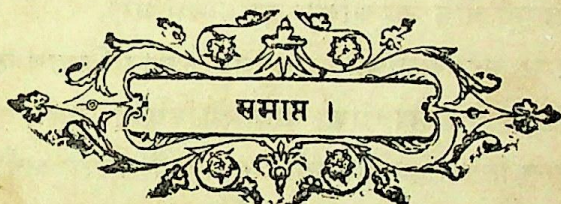
निज पूर्वजोंके सद्गुणोंकोयत्नसे मनमें धरो,
सब आत्म-परिभव-भाव तज निज रूपका चिन्तन करो।
निजपूर्वजोंके सद्गुणोंका ध्यान जो रखती नहीं,
वह जाति जीवित जातियोंमें रह नहीं सकती कहीं।
हम हिन्दुओंके सामने आदर्श जैसे प्राप्त हैं,
संसारमें किस जातिको किस ठौर वैसे प्राप्त हैं।
भवसिन्धुमें निजपूर्वजोंको रीतिसेही हम तरें,
यदि हो सकें वैसे न हम तो अनुकरण तोभी करें॥

(सुकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त)

नरसिंह प्रेस

हमारे छापेखानेमें लेटर-हेडिंग, लिफाफे, पोष्ट-कार्ड, विज़िटिंग-कार्ड, रसीदें, हुण्डी, चिक, बिल, चालान, विवाह शादी और मौत ग़मी की चिट्ठियाँ विज्ञापन वगैरः बहुत ही सुन्दरता से छापे जाते हैं।

छपाई सफ़ाई इतनी सुन्दर की जाती है कि मनुष्य का मन मोहित हो जाता है। छपानेवाला जितना बढ़िया छपाना चाहे उतना ही बढ़िया काम छाप दिया जाता है। स्याही नीली, काली, लाल, बैंगनी, गुलाबी, हरी, हर क़िस्मकी रहती हैं। हमारे प्रेसका हिन्दी काम बम्बई की छपाई से टक्कर लेता है और अँगरेज़ी काम अँगरेज़ी प्रेसोंकी बराबरी करनेका हौंसला करता है।

जिन्हें किसी प्रकारका काम छपाना हो, वे नमूना लिख कर भेज दें। ठीक उनकी इच्छानुसार काम कर दिया जायगा। साथ ही किफायतसे काम छाप दिया जायगा।

जो हिन्दीके सुलेखक महाशय अपनी पुस्तक हमारे

ख़र्चसे छपाना चाहें, उन्हें अपनी पुस्तक डाकसे रजिष्ट्री कराकर हमारे पास भेजनी चाहिये, साथ ही।) आने के टिकट भी उसमें रख देने चाहियें। यदि पुस्तक हमारे पसन्द होगी तो उसको शर्तें ठहराली जायँगी और उनके चार आनेके टिकट वापिस कर दिये जायँगे। यदि भेजी हुई पुस्तक हमारे नापसन्द होगी तो उन्हींके टिकटोंसे किताब उनके पास वापिस भेज दी जायगी। पुस्तक लिखनेवालोंको उनकी मिहनतके अनुसार १०) २०) ५०) १००) २००) रुपया इनाम दिया जायगा; किन्तु पुस्तकसे उनका कुछ सम्बन्ध न रहेगा। यदि ग्रन्थ-कर्त्ता महाशय पुस्तक पर अपना नाम छपाना चाहेंगे तो उनको नक़द इनाम न दिया जायगा; किन्तु १०।२० २५।५० पुस्तकें उन्हें दी जायँगी। हिन्दी लेखकोंको अवश्य हिन्दी पुस्तकें लिखनी और हमारे पास भेजनी चाहियें। पुस्तक लिखनेसे उन्हें घर बैठे खासी आमदनी होने लगेगी।

मैनेजर

"नरसिंह प्रेस"

२०१ हरिसन रोड कलकत्ता।

स्वास्थ्यरक्षा ।

(द्वितीय आवृत्ति)

यह वही पुस्तक है जिस की तारीफ़ समस्त हिन्दी समाचार पत्रोंने दिल खोल कर की है। इस की उत्तमता के लिये यही प्रमाण काफ़ी है कि इसका दूसरा संस्करण छप गया और बिक भी गया। अब तीसरेकी तय्यारियाँ होरही हैं। जो कोक शास्त्र की ज़रूरी बातों को जानना चाहते है, जो संसार का सच्चा सुख भोगना चाहते हैं, जो बहुत दिनोंतक जीना चाहते हैं, जो अपने घरका इलाज आप ही करना चाहते हैं, उन्हें यह पुस्तक अवश्य ही दिल लगाकर पढ़नी चाहिये। इसमें जो विषय लिखे गये हैं वह सभी आज़मूदा हैं। मनुष्य को अपने सुख के लिये जो कुछ जानने की ज़रूरत है वह सभी इस में लिखा गया है। जो संसारमें सुखसे जीवन का वेड़ा पार करना चाहते हैं, उन्हें यह अनमोल पुस्तक लोभ त्यागकर अवश्य ख़रीदनी चाहिये। छपाई सफ़ाई इतनी सुन्दर है कि पुस्तक को छाती से लगाये बिना जी नहीं मानता।

दाम १॥) डाकखर्च ।) सुन्दर फैशनेबिल जिल्दवाली का दाम २) और डाकखर्च ।-)

अंगरेज़ी शिक्षा

प्रथम भाग ।

(चतुर्थ आवृति)

आजतक ऐसी किताब नहीं छपी। इस किताबके पढ़ने से थोड़ी सी देवनागरी जाननेवाला भी बिना गुरु के अँगरेज़ी अच्छी तरह सीख सकता है। इसके पढ़ने से २।३ महीने में ही साधारण अँगरेज़ी बोलना, तार लिखना, चिट्ठी पर नाम करना, रसीद और हुण्डी वगैरः लिखना बखूबी आसक्ता है। किताब की छपाई सफ़ाई मनोमोहिनी है। हर एक अँगरेज़ी शब्द का उच्चारण दिया गया है। इसमें कूड़ा करकट नहीं भरा गया है। इस पुस्तक में वही बातें लिखी गई हैं जो व्यौपारियों, रेलमें काम करनेवालों, डाकख़ाने में काम करनेवालों तथा तार घर आदि में काम करनेवालों के काममें आती हैं। दाम १५० सफों की पोथी का ॥) डाक खर्च ।-)

अँगरेज़ी शिक्षा

दूसरा भाग ।

जिन्होंने हमारा पहिला भाग पढ़ लिया है या जिन्होंने कोई दूसरी पुस्तक थोड़ी बहुत पढ़ली है उनके लिये हमारी "अँगरेज़ी शिक्षा" का दूसरा भाग निहायत उपयोगी है। इसमें अँगरेजी व्याकरण (English Grammar) बड़ी उत्तमतासे समझाया गया है। आजतक कोई पुस्तक हमारी नज़र नहीं आई, जिसमें इससे उत्तम काम किया गया हो।

व्याकरण वह विद्या है जिसके सीखे बिना किसी भी भाषाका आना महा कठिन है। कितनी ही किताबें क्यों न पढ़लो; जबतक व्याकरण का ज्ञान न होगा तबतक पढ़नेवाले का हृदय सूना ही रहेगा; लेकिन व्याकरण है बड़ा कठिन विषय।

इस कठिन विषय को ग्रन्थकर्त्ताने अत्यन्त सरल कर दिया है। हिन्दी जाननेवाला, अगर शान्त स्थान में, एकाग्र-चित्तसे, इसका अभ्यास करे तो बहुत जल्दी होशियार हो सकता है। इसके सीख जाने पर उसे चिट्ठियाँ लिखना, बाँचना, अँगरेज़ी समाचारपत्र पढ़ना बिल्कुल आसान हो जायगा। हम दावेके साथ

कहते है कि हमारी अँगरेज़ी शिक्षाके चारों भाग पढ़ लेने पर जिसे अँगरेज़ी में अखबार पढ़ना, चिट्ठियाँ वगैर: धड़ाके से लिखना न आजायगा तो हम दुगुनी क़ीमत वापिस देंगे। मगर किताब मँगा लेने से ही कोई पण्डित नहीं हो सकता, उसका याद करना भी ज़रूरी है। दाम केवल १) रुपया और डाक महसूल ॥) है।

अंगरेज़ी शिक्षा

तीसरा भाग।

इस भाग में विशेषण और सर्वनाम (Adjective और Pronoun) दिये गये हैं और उनको इतने विस्तारसे समझाया है कि मूर्ख से मूर्ख भी आसानी से समझ सकेगा। इसके बाद सब प्राणियों की बोलियाँ तथा संज्ञा और विशेषणों के चुने हुए जोड़े दिये हैं जिनके याद करनेसे अख़बार नॉविल आदि पढ़नेमें सुभीता होगा। इनके पीछे उपयोगी चिट्ठियाँ और उनका अनुवाद दिया गया है। शेषमें, शब्दोंके संक्षिप्त रूप (Abbreviations) बहुतायतसे दिये हैं। यह भाग दूसरे भाग से भी उत्तम और छोटा है।

दूसरे भागके आगेका सिलसिला इसी भागमें चलाया गया है। दाम १) डाक खर्च ≤)

अंगरेजी शिक्षा।

चौथा भाग।

हमारी लिखी हुई अँगरेजी शिक्षाके तीनों भागोंको पबलिक ने दिलसे पसन्द किया है। अतः हमें अब प्रशंसा करनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही कहना है कि अँगरेज़ी व्याकरण जितना बाक़ी रह गया था वह सभी इस भागमें खतम कर दिया गया है; साथ ही और भी अनेक उपयोगी विषय दे दिये गये हैं। दाम १) डाकखर्च ≤)

हिन्दी बंगला शिक्षा

बङ्गला साहित्य आजकल भारत की सब भाषाओंसे ऊँचे दर्जे पर चढ़ा हुआ है। उसमें अनेक प्रकार के रत्नोंका भण्डार है। अतः हर शख्स की इच्छा होती

है कि हम उन ग्रन्थोंको देखें और आनन्द लाभ करें। किन्तु बँगला सीखनेका उपाय न होनेसे लोगोंके दिलकी मुराद दिलमें ही रह जाती है। हमारे पास ऐसी पुस्तक की, जिसके सहारे से हिन्दी जाननेवाला बँगला बोलना, लिखना और पढ़ना जान जावे, हज़ारों माँगें आईं। मगर ऐसी पुस्तक न तो हमारे यहाँ थी और न बाज़ारमें ही मिलती थी।

अब हमने सैकड़ों रुपया खर्च करके यह पुस्तक हिन्दी और बँगलामें छपाई है। रचना-शैली इतनी उत्तम है कि मूर्ख भी इसको पढ़ने से बिना गुरुके बँगला का अच्छा ज्ञान सम्पादन कर सकता है।

जिन्हें बँगला सीखने का शौक़ हो, जिन्हें बँगला के अपूर्व्व रत्न देखने हों, जिन्हें बँगाल देशमें रोज़गार व्यौपारऔर नौकरी करनी हो, उन्हें यह पुस्तक ख़रीद कर बँगला अवश्य पढ़नी चाहिये।

इस किताब में एक और खूबी है कि बँगला जाननेवाला इससे हिन्दी भाषा और हिन्दी जाननेवाला बंगला सीख सकता है। ऐसी उत्तम पुस्तक आज-तक हिन्दीमें नहीं निकली। ख़रीददारों को जल्दी करनी चाहिये। देर करने से यह अपूर्व्व रत्न हाथ न आवेगा। दाम ॥) डाकखर्च ≈)

———

अक़्लमन्दीका ख़ज़ाना

यह पुस्तक यथा नाम तथा गुण है। ऐसी कौन सी नीति और चतुराई की बात है जो इस पुस्तक में नहीं है। भारतवर्षके प्राचीन नीतिकारों की नीति, गुलिस्ताँके चुनीदा उपदेश तथा और भी अनेक चतुराई सिखानेवाली बातें इसमें कूट कूट कर भरी गयी हैं।

जो दुनिया में किसीसे धोखा खाना नहीं चाहते, जो सभा-चातुरी सीखना चाहते हैं, जो विदुर, कणिक, चाणक्य, शुक्राचार्य्य की नीतिका स्वाद चखना चाहते हैं, जो शेख सादी की अपूर्व्व नीतिका मज़ा लूटना चाहते हैं, जो चीन देश के विद्वान बुद्धिमान कॉनफूशियस की अक़्लमन्दी की अद्भुत बातें जानना चाहते हैं, जो संसारमें सुखसे ज़िन्दगी बिताना चाहते हैं, उन्हें यह पोथी अवश्य ख़रीदनी चाहिये।

आज तक ऐसी उत्तम पुस्तक हिन्दी में नहीं निकली। यह पुस्तक हिन्दी में नयी ही निकली है। इस पुस्तकके दस पाँच दफ़े दिल लगाकर पढ़ लेने पर, महामूर्ख भी महा बुद्धिमान हो जावेगा। जिन्हें अपनी

लड़कों को महा चतुर और अक्लका पुतला बनाना है वे इस पुस्तक को अवश्य खरीदें। दाम १) डाक खर्च ≋)

॥ राजसिंह ॥

वा

चंचलकुमारी।

यह राजसिंह सचमुच उपन्यासों का राजा है, जिस प्रकार से बनका राजा सिंह बनैले जन्तुओंपर अपना पूरा प्रभाव रखता है उसी तरह यह भी उपन्यासोंमें "सिंह" हो रहा है। भारतवर्ष की इतनी कायापलट हो जानेपर भी अभीतक चित्तोरका नाम नहीं गया है, अभीतक चितौरकी उज्ज्वल-कीर्त्ति दिग्-दिगान्तरमें गूँज रही है, राजपूतानेकी स्वाधीनता लोप हो जानेपर भी अभी तक चितौरका माथा ऊँचा हो रहा है। उसी प्रकारसे हमारे उपन्यासके नायक "राजसिंह"का नाम भी इतिहास जाननेवालोंके आगे छिपा नहीं है। राज सिंहकी वीरता, धीरता, चतुरता, बुद्धिमत्ता, प्रतिज्ञापालनकी पूरी पूरी सत्ता, अचल प्रतिज्ञा,

दूरदर्शिता, प्रजापालनमें तत्परता और निर्लोभता अभी तक उनका नाम निष्कलङ्क कर रही है। हमारा "राजसिंह" ऐतिहासिक शिक्षा देनेवाला एक रत्न है। जिस औरङ्ग़ज़ेबकी कूटनीतिके आगे समूचा भारत थरथराता था, जिस मुगल सम्राट औरङ्गज़ेबकी अमलदारीमें हिन्दू-राजे अपनी बहन बेटी व्याह देना अपना माथा ऊँचा करना समझते थे, जिस औरङ्गज़े-बके थोड़ेसे इशारेमें ही बड़े बड़े राजे महाराजे उनके पैरोंके नीचे लोटते थे, और जिस प्रतापी मुगल-सम्राटने बड़े बड़े राजाओंसे भी "जज़िया" नामक कर वसूल कर लिया था, उसी प्रतापी औरङ्गज़ेबके चंगुलसे एक राजपूत हिन्दू सुन्दरीको बचानेके लिये राजसिंहकी अटल प्रतिज्ञाका पूरा पूरा खाका इसमें खींचा गया है। इसको पढ़नेसे ही प्यारे पाठकोंको मालूम हो जायगा कि राजपूतों की प्रतिज्ञा कैसी अटल होती थी।

इस उपन्यासकी सभी बातें आश्चर्य्यमें डालनेवाली, कुतूहल को बढ़ानेवाली और शिक्षाको देनेवाली हैं। रूप नगरके राजा विक्रमसिंहका सुन्दर राज्य, राजकु-मारी चञ्चलकुमारी का एक तस्वीर देखकर राजसिंह-पर मोहित होना, अपनी तस्वीरका अनादर सुनकर औरङ्ग़ज़ेबका क्रोधित होना, हज़ारों सिपाही भेजकर

चञ्चलकुमारीको बुलवाना, चञ्चलका राजसिंहको विचित्रपत्र भेजना, राजसिंहका विचित्र रीतिसे मुग़लोंके हाथसे चञ्चलको छुड़ाना, माणिकलालकी कूट बुद्धि, औरङ्ग़ज़ेबका भयानक क्रोध, विक्रमसिंहका भारी परिताप, चञ्चलकी सखी निर्मलकी अद्भुत कार्य्यावली, औरङ्गज़ेबकी कन्या जेबुन्निसाका मुबारकसे गुप्तप्रेम, औरङ्ग जेबके शाही महलकी गुप्त घटनायें ; राजसिंहका औरङ्गज़ेबके नाम पत्र भेजना, औरङ्गज़ेबका और भी क्रोधित होना, राजसिंहसे औरङ्गज़ेबकी भयानक लड़ाई,तीन तीन बार औरङ्गज़ेबका हारना आदि घटनायें पढ़ते पढ़ते पाठक उपन्यास-मय हो रहेंगे। ऐसा उत्तम मनोरम और सच्ची घटनाओंसे भरा हुआ उपन्यास बहुत कम देखनेमें आवेगा। सच तो यह है कि यह उपन्यास उपन्यासोंमें मुकुट हो रहा है। अवश्य पढ़िये, पहिलेही की भाँति सर्व-साधारणको शिक्षा दिलानेके लिये ३०६ पृष्ठोंकी उत्तम पुस्तकका दाम कुल ॥) डाक महसूल ≈) रक्खा गया है।

मानसिंह

वा

कमलादेवी।

यह उपन्यास मुसल्मानी अमल्दारी की चालोंका बायस्कोप और हिन्दू राजाओंके नामका पूरा पूरा उदाहरण दिखा देनेवाला है। हिन्दू-संसार में ऐसे बहुत कम मनुष्य होंगे, जिन्होंने अकबरके दाहिने हाथ महाराज मानसिंहका नाम न सुना होगा। यह ग्रन्थ उन्हीं ऐतिहासिक वीरकी विचित्र कार्यावलीसे भरा हुआ है। मानसिंहके नामका कलङ्क, अपनी बहनको अकबरसे व्याह देना, महाराणा प्रतापका साहसपूर्ण उद्गार, हेमलताका विचित्र प्रेम, एक बाज़ीगरकी विचित्र चतुराई, बहराम खाँका कपट, नूरजहाँका सलीमसे प्रेम, शेरशाह तथा सलीमका बाहुयुद्ध, शेरखाँका नूरजहाँसे विवाह, कमलादेवीका दरबार, देवसिंहकी भीषण वीरता, राजपूतोंमें आपस की फूट, कमलादेवीका गुप्त प्रेम, इसी गुप्त प्रेमके कारण मानसिंहकी ख़राबी, महाराज मानसिंह और हेमलताका सच्चा प्रेम, मानसिंहके दुराचार, हेमलताकी निराशा, अरावली

पर्वतपर फिर मानसिंह और मुगलोंका भयानक युद्ध, मानसिंहकी सच्ची वीरता और रणकौशल आदि रहस्य-मय घटनाओंको पढ़ते पढ़ते पाठक अपने आपको भूल जायँगे। ग्रन्थ बड़ा ही रोचक और भावपूर्ण हुआ है। ऐतिहासिक घटनाओंका इस सुन्दरतासे वर्णन किया गया है कि पढ़नेवालोंके हृदयमें एक एक बात चुभ जाती है। सच तो यह है कि भारतवर्षकी इस दीन अवस्थामें ऐसे ही उपन्यासोंकी आवश्यकता है जो पढ़नेवालोंके हृदयपर उनके पूर्व्व पुरुषों का चित्र अङ्कित कर सकें। आशा है हमारा यह उपन्यास वही काम कर दिखायेगा। इस उपन्यासको पढ़ते समय पाठकोंको परिणामपर भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये। हम अब इसकी प्रशंसामें अधिक लिखना व्यर्थ समझते हैं; क्योंकि यह अपना नमूना आपही है। यदि आपलोग इसे मँगाकर ध्यान देकर पढ़ेंगे; तो आपलोगोंको मालूम हो जायगा कि विज्ञापनका एक एक अक्षर सत्य है। अवश्य पढ़िये, ऐसा अवसर बार बार हाथ नहीं आता। सर्व साधारणके सुभीतेके लिये २५६ पृष्ठोंकी पुस्तकका दाम कुल ॥=) रक्खा गया है। डाकमहसूल =)

———

गल्पमाला

यह पुस्तक हाल में ही प्रकाशित हुई है। इसमें एक से एक बढ़ कर मनोरञ्जक और उपदेश पूर्ण दस कहानियाँ लिखी गयी हैं। पढ़ना आरम्भ करने पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। हिन्दीके अच्छे अच्छे विद्वानोंने इस पुस्तक की प्रशंसा की है। पढ़ते समय करुणाकी नदी लहराती है। कभी प्रेमका समुद्र उमड़ने लगता है। कभी पुण्यकी जय देख, हृदय में पवित्र भावका सञ्चार होता है और कहीं पाप के कुफल को देख कर परमात्मा के अटल न्यायकी महिमा प्रत्यक्ष आँखोंके आगे दिखाई देने लगती है। इस उपन्यासोंके पढ़ने में जो आनन्द आ सकता है, वह केवल गल्पमाला ही से मिल सकता है। दाम ।=) डाकखर्च =)

बादशाह लियर

यह विलायतके जगद्विख्यात कवि शेक्सपियर के "किंगलियर" नामक नाटक का गद्य में बहुत ही मनोमोहन और रोचक अनुवाद है। एकबार पढ़ना आरम्भ करके बिन खतम किये पुस्तक के छोड़ने को

जो नहीं चाहता। शेक्सपियर ने बादशाह लियर और उसकी तीन कन्याओंका चरित्र बहुत ही उत्तम रूपसे लिखा है। मनोरञ्जन होनेके अलाव: इस पुस्तक से एक प्रकार की शिक्षा भी मिलती है। पढ़ते पढ़ते कभी हँसी आती है। कभी बूढ़े बादशाह लियर की दुर्दशा का हाल पढ़ कर आखोंमें आँसू भर आते हैं! हिन्दी-प्रेमियोंको यह पुस्तक भी अवश्य ही देखनी चाहिये। दाम ॥) डाकखर्च ॥)

गुलिस्तां

यह वही पुस्तक है जिसकी प्रशंसा तमाम जगत् में हो रही है। वलायत, जरमनी, फ्रान्स, चीन, जापान और हिन्दुस्तानमें सर्व्वत्र इस पुस्तकके अनुवाद हो गये हैं। लेकिन अफ़सोस की बात है कि बेचारी हिन्दी में इसका एक भी पूरा अनुवाद नहीं हुआ। इसके रचयिता शेखसादीने इसमें एक एक बात एक एक लाख रुपये की लिखी है। वास्तव में यह पुस्तक अनमोल है। इसी कारण है यह पुस्तक यहाँ मिडिल, ऐंट्रेंन्स, एफ़० ए० बी० ए० तक में पढ़ाई जाती है। इस की नीतिपर चलनेवाला मनुष्य सदा सुख से रह कर जीवन का बेड़ा पार कर सकता है। मनुष्य

मात्र को यह पुस्तक देखनी चाहिये। इसका अनुवाद सरल हिन्दीमें हुआ है। छपाई सफ़ाई भी देखने लायक है। दाम १) डाकखर्च ≈)

राधाकान्त

(उपन्यास)

आज कहने को तो अनेक उपन्यास निकलते हैं किन्तु वह सब रद्दी हैं। उनसे पाठकोंके मन और चरित्र के ख़राब होनेके सिवाय कोई लाभ नहीं है। इसके पढ़ने से एक-अमीर की सच्ची घटना आँखों के सामने आजाती है ; आदमी धनमत्त होकर कैसी कैसी ठोकरें खाता है ; खोटी संगति में पड़ कर, धनवानों-के लड़के कैसे ख़राब हो जाते हैं ; खुशामदी लोग बड़े आदमियों की कैसी मिट्टी ख़राब करते हैं ; जब तक धन हाथमें रहता है तब तक खुशामदी मधुमक्खियों की तरह चिपटे रहते हैं धन स्वाहा होते ही वही बात भी नहीं पूछते ; रन्डियाँ कैसी मतलबी और धन की प्रेमी होती हैं और सच्चे और आदर्श मित्र कैसे होते हैं।

इस पुस्तकके देखने से उपरोक्त विषयों के सिवाय ईश्वर में प्रेम होने, ईश्वर पर एक मात्र भरोसा करने, विपत्तिकाल में धैर्य्य धारण करने की युक्तियाँ भी मालुम

होंगी। अमीरों को तो इस पुस्तक को अवश्य ही बालकों को पढ़ाना चाहिये। इन्हीं बातों के न जानने और ऐसी पुस्तकों के न पढ़ने से ही लाख के घर ख़ाक में मिल जाते हैं। पुस्तक अनमोल है। छपाई भी इतनी सुन्दर है कि लिख नहीं सकते। दाम ॥) डाकखर्च ≋)

भारत में पोर्च्युगीज़।

(इतिहास)

यह एक पुराना इतिहास है। इस में यह बात खूब ही सरल भाषा में दिखायी गयी है कि पहले पहल फिरङ्गी लोग भारत में कैसे आये, उन्होंने कैसे भारत का पता लगाया। सब से पहले भारत में आनेवाले फिरङ्गी को सात समन्दर चौदह नदियाँ पार कर के भारत की खोज में आने के समय कैसे कैसे कष्ट उठाने पड़े। फिरङ्गियों (पोर्च्युगीज़ों) ने दक्खन भारतमें कैसे २ अत्याचार किये; भारत का धन वे अपने देशमें कैसे लेगये; भारतीय ललनाओं को कैसी बेइज्जती की; अन्तमें भगवान भारतवासियों पर दयालु हुए; उन्होंने शान्तिप्रिय, प्रजावत्सला, न्यायशीला ब्रिटिश जाति को

भारतवासियों के कष्ट निवारणार्थ भारत में भेजा। अँगरेज़ों ने सब भारतवर्ष अपने हाथ में लिया। मुसल्मान और पोर्च्यु गीज़ों को भगा कर भारत में शान्ति स्थापन की। आज अँगरेज़ महाराज के छत्रतले हम भारतवासी सुख चैन की बंशी बजाते हैं। देशमें लूट मार काटफाट बन्द है। शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं। एक महा बूढ़ी डोकरी भी सोना उछालती फिरती है पर कोई यह कहनेवाला नहीं है कि तेरे मुँह में कै दाँत हैं।

यह सब हालात इस पुस्तक के पढ़ने से मालुम होंगे। कौन भारतवासी इन गुप्त और पुराने विषयों को न जानना चाहेगा? प्रत्येक भारतवासी को अपनी जन्मभूमिका पुराना हाल जानना चाहिये और अँगरेज़ों की भलाई के लिये उन का कृतज्ञता-भाजन होना चाहिये। दाम ॥) डाकखर्च ≶)

बाल गल्पमाला

यह पुस्तक हिन्दी जगत् में बिल्कुल नयी और मनुष्य मात्र के देखने योग्य है। मनुष्य मात्र को चाहिये कि इसे पढ़े और अपनी सन्तान को पढ़ावे। अगर लोग इसे अपने बालकों को पढ़ावें तो यह अधो

गति पर पहुँचा हुआ भारत फिर उन्नतिके उच्चतम शिखर पर चढ़ जाय। घर घरमें सुख चैनकी बाँसुरी बजने लगे। लड़के मा बाप की आज्ञा पालन करें और सभी स्त्रियाँ पतिव्रता हो जायँ।

इसमें रामचन्द्र की पितृ-भक्ति; भीष्म पितामह का कठिन प्रतिज्ञा पालन; लक्ष्मण और भरतका भ्रातृ-प्रेम; श्रीकृष्ण की विनय; युधिष्ठिर और महात्मा वशिष्ठ की क्षमाशीलता; हरिश्चन्द्र का सत्यपालन; मुद्गलका आतिथ्य सत्कार; आरुणिक की गुरुभक्ति; महाराणा प्रतापसिंह के प्रोहित की राजभक्ति; चण्डका कर्त्तव्य पालन और कुन्तीका प्रत्युपकार खूब ही सरल और सरस भाषामें दिखाया है। अधिक क्या कहें पुस्तक घर घरमें विराजने और पूजी जाने योग्य है। दाम ।=) डाकखर्च ।=)

अलिफ़ लैला

पहला भाग।

यह ऐसी उत्तम किताब है कि जिस का तरजुमा फ्रेंच, जरमन, अँगरेजी, रूसी, जापानी आदि भाषाओंमें तीन तीन और चार चार प्रकार का हो चुका है। हमने भी इसका तरजुमा एक निहायत बढ़िया अँगरेज़ी

पुस्तकसे किया है। तरजुमे में कोई विषय छोड़ा नहीं है। भाषा इसकी निहायत सीधी साधी और ऐसी सरल रक्खी है कि थोड़े पढ़े बच्चे से लेकर बहुत पढ़े हुए विद्वान तक इससे आनन्द लाभ कर सकेंगे। उपन्यासोंका स्वाद चखे हुए पाठकोंको यह पुस्तक बहुत ही प्यारी लगेगी। एकबार पढ़ना शुरू करके पढ़नेवाले खाना पीना भूल जायँगेऔर इसे समाप्त किये बिन न रहेंगे। पढ़नेवाले औरतों की चालाकियाँ, उनकी बेवफ़ाई, आदि पढ़ कर हैरत में आजायँगे और कहने लगेंगे कि हे भगवन्! क्या औरतें इतनी मक्कारा होती हैं! देव राक्षस सन्दूकोंमें बन्द रख कर भी अपनी औरतोंकी चालाकी न पकड़ सके! औरतों ने जब देव जिन्नों के ही चूना लगा दिया तब मनुष्य विचारा क्या चीज़ है? २११ सफोंकी बड़ी पुस्तक का दाम केवल ॥) और डाकखर्च ।) लगेगा।

रामायण-रहस्य

प्रथम भाग

हिन्दी जगत् में यह भी एक नयी चीज़ है। रामायण का परिचय देना अनन्त सागर सलिलमें दो चार बिन्दु जल डालना है। ऐसा भावमय, ऐसा सुमधुर,

ऐसा शिक्षाप्रद, ऐसा भक्तिमय, ऐसा रसीला और दूसरा ग्रन्थ संसार में नहीं है।

इस जगत् में कितने ही ग्रंथ बने और बन रहे हैं परन्तु रामायण के समान किसी का आदर न हुआ। आदर कहाँ से हो, इसके समान और ग्रन्थ है ही नहीं। मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, स्त्री-धर्म, मित्र-धर्म, राज-नीति, प्रजा-धर्म, प्रजा-पालन, युद्ध-शिक्षा, युद्ध-नीतिका जैसा सुन्दर चित्र रामायण में है वैसा और किसी ग्रन्थमें नहीं है। रामचन्द्रकी पितृ-भक्ति, लक्ष्मण और भरत की भ्रातृ-भक्ति, सीताका पति-प्रेम, दशरथका पुत्र-प्रेम, हनूमान की स्वामिभक्ति का नमूना जैसा इस ग्रन्थमें है और ग्रन्थोंमें नहीं है।

महात्मा तुलसीदासजी रामायण लिखकर अमर हो गये हैं किन्तु अनेक लोग ऐसे है जो तुलसी दासजी की गूढ़ भावमयी कविता को समझने में असमर्थ होते हैं। इसीसे हमने वाल्मीकि, अध्यात्म, मयङ्क और तुलसीकृत रामायणों के आधारपर इसे अत्यन्त सरल हिन्दीमें एक विद्वान् लेखक से लिखवाकर प्रकाशित किया है। जिन्हें वाल्मीकि आदि सारी रामायणों का सरल भाषामें स्वाद लेना हो वे इसे अवश्य देखें। बहुत क्या लिखें चीज़ देखने ही योग्य है। पढ़ते पढ़ते बिना ख़तम किये छोड़ने को जी नहीं चाहता। भाषा उप-

न्यासों की सी है; इससे चौगुना आनन्द आता है। घटनाएँ पानीकी घूँटकी तरह दिमाग़ में घुसती चली जाती हैं। छपाई भी इतनी सुन्दर हुई है कि देखते ही पुस्तक को छाती से लगाने को जी चाहता है। यह प्रथम भाग है। इसमें बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड पूरे हुए हैं। बड़े आकारके १६० सफोंकी पुस्तक का दाम ॥) डाक खर्च ≈)

हिन्दी भगवद्गीता।

गीताकी एक एक शिक्षा, एक एक बात, मनुष्यको संसार के दुःख क्लेशोंसे छुड़ाकर तत्वज्ञान सिखाती है और संसारी मनुष्योंके अशान्त मनको शान्ति देती है। आत्मज्ञान जितनी अच्छी तरह इसमें कहा गया है और पुस्तकों में नहीं कहा गया है। इसके पढ़ने समझने और इस पर विचार करनेसे मनुष्य संसार के बन्धनोंसे, जन्म मरणके कष्टसे, छुटकारा पाकर मोक्ष लाभ करता है। महाराज कृष्णचन्द्रका एक एक उपदेश पृथ्वी भरके राज्य से भी बढ़कर मूल्यवान है। मनुष्य मात्रको यह भगवद्वाक्य देखना, पढ़ना और समझना चाहिये और

अपना भविष्य सुधारना चाहिये। आज तक गीताके कितने ही अनुवाद हो चुके हैं; मगर कुछ तो अधूरे हैं और कुछ ऐसी पुराने ढाँचेकी ऊटपटाँग हिन्दीमें अनुवाद हुए हैं, कि उनका समझना ही महा कठिन है; इसलिये गीता प्रेमियोंका मतलब नहीं निकलता।

यह अनुवाद एकदम सरल हिन्दीमें हुआ है और इतनी अच्छी तरह हरेक विषय समझाया है, कि मूर्खसे मूर्ख बालक भी गीताके गहन विषयोंको बड़ी आसानीसे समझ कर हृदयङ्गम कर सकेगा। ख़ाली गीता-पाठ करनेसे कुछ लाभ नहीं हो सकता; किन्तु गीताको पढ़कर समझने और विचार करनेसे जो लाभ मनुष्यको हो सकता है वह त्रिलोकी के राज्यसे भी बढ़कर है। अधिक क्या कहें इस पुस्तकमें ग्रन्थकर्त्ताने जैसी हरेक विषयको समझानेकी कोशिश की है वैसी किसीने भी नहीं की है। जिनके पास गीताके और और अनुवाद हों, उन्हें भी यह अनुवाद अवश्य देखना चाहिये।

R 74.2,SHA-B
34554

पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित है। इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर छै नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का अर्थदण्ड लगेगा।

12 JUN 1976

G.132/84 कारी

१००००.६.५६। २४,५५४